❀ श्री सत्य-भगवते नमः ❀

श्रीमद् गौतम-गीता

रचयिता -

परम आदरणीय, निर्भीक वक्ता, ज्ञान तपस्वी

महामना गुरुदेव श्री कस्तूरचन्द्र जी

महाराज के

सुशिष्य

कविरत्न श्री अमृतचन्द्र जी महाराज

प्रकाशक :-

पुरुषोत्तम दास गोयल, भटिण्डा ।

* * *

वीर सम्वत् २४८३	मूल्य - एक रुपया आठ आने १-८-०	विक्रम सम्वत् २०१३

प्राप्ति स्थान :

गौतम ज्ञान पीठ

भटिण्डा (पंजाब)

मुद्रक

सुभाष सिलक्त प्रिंटिंग प्रेस,
हस्पताल रोड, भटिण्डा।

श्रीमद् गौतम गीता के रचयिता
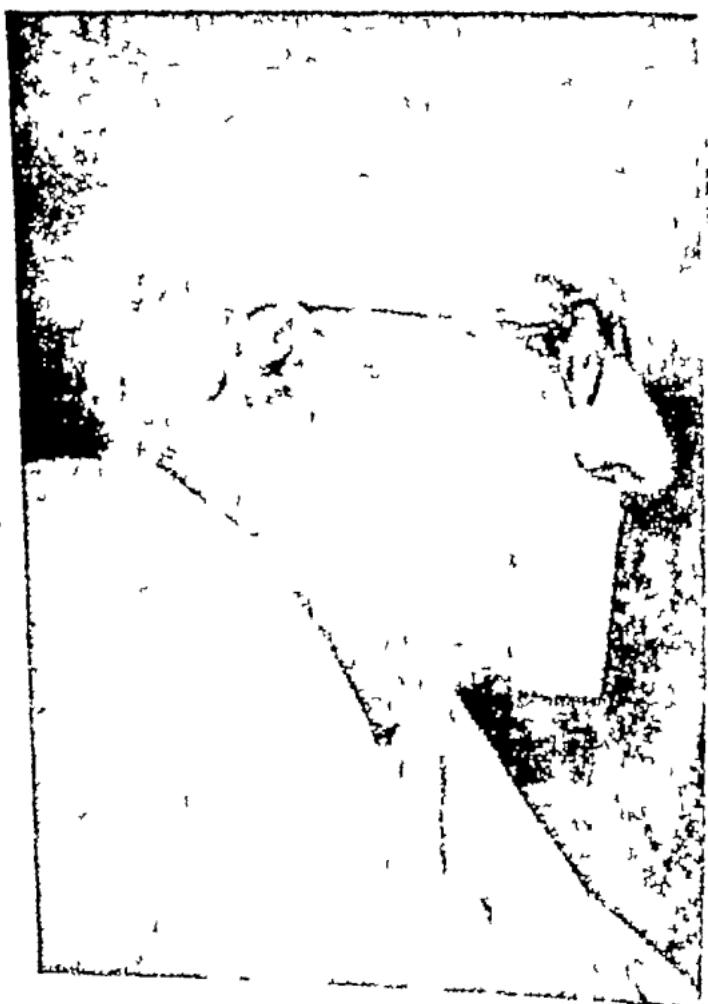
कविरत्न प्रसिद्ध वक्ता

श्री अमृत चन्द्र जी महाराज

❀ आत्म-निवेदन ❀

आज से आठ वर्ष पहिले की बात है। चातुर्मास के दिन थे। एक दिन व्याख्यान के पश्चात् एक चालीस वर्षीय जैन बन्धु ने अपनी इच्छा प्रगट करते हुए कहा —मुनि जी ? कोई ऐसा शास्त्र बताइए, जिसके द्वारा अपने धर्म का प्रारम्भिक ज्ञान हो सके। प्रश्न का उत्तर तो सीधा सा था कि मैं किसी भी एक धार्मिक ग्रन्थ का नाम ले देता। किन्तु प्रश्न के शब्द कुछ ऐसे ढंग के थे, जिनसे कि मेरा हृदय अनायास ही हर्ष और विषाद की दो रेखाओं के बीच आ गया। मुझे हर्ष तो इस लिए हुआ कि चालीस चालीस वर्ष के अर्धवृद्धों के हृदय में भी अभी तक अपने धार्मिक ज्ञान की जिज्ञासा बनी हुई है। दूसरी ओर विषाद का कारण यह था कि न जाने हमारे देश में ऐसे ऐसे कितने व्यक्ति हैं, जिन्हें अभी तक अपने धर्म का प्रारम्भिक बोध भी नहीं हो पाया है। सचमुच यह बडे खेद की बात है कि इतने विशाल आध्यात्मिक देश में जन्म लेकर भी जीवन, धर्म से अछूता रह जाये। हां, तो आइए। तनिक विचार करें कि इसका

क्या कारण है ? यह एक सर्वसिद्ध सिद्धान्त है कि संसार में जितने भी कार्य होते हैं, उनमें कोई न कोई कारण अवश्य होता है। कारण के बिना कार्य की निष्पत्ति नहीं होती। तब फिर हमारे समाज की धार्मिक अनभिज्ञता में कोई न कोई कारण अवश्य है और वह कारण है शास्त्र स्वाध्याय के प्रति अरुचि। हमारे समाज में शास्त्रों की कमी नहीं है। परन्तु अकेला शास्त्र क्या करें ? जब उन्हें कोई पढ़ने वाला ही न हो। फिर पढ़ना भी उसी दशा में सफल होता है जब उसे क्रियात्मक रूप दिया जाय। कोरी पढ़ाई से काम नहीं चलेगा। पढ़े हुए अथवा सुने हुए शुभ विचारों पर आचरण करना कल्याण कारक होता है। बस। इसी उद्देश्य की पूर्ति के लिए मैंने "आवश्यकता आविष्कार की जननी है" इस सुभाषित की सत् प्रेरणा से यह उपक्रम किया है। मुझे किंचित् भी आशा नहीं थी कि मेरे निर्बल हाथों से कभी ऐसा शास्त्र लिखा जावेगा। किन्तु श्री गुरु महाराज की कृपा अनन्त है। उन्हीं के कृपा प्रसाद से यह शास्त्र निर्माण कार्य बाधारहित पूर्ण हो पाया है। एक यह शास्त्र ही क्या मेरा तो समस्त जीवन ही गुरुदेव के आशीर्वाद से प्रशस्त हुआ है। अतः "श्रीमद् गौतम गीता" के प्रस्तुत करने का भी यही मूल कारण हैं। ग्रन्थ में क्या है ? इस प्रश्न का उत्तर दृष्टिगोचर होने वाले पृष्ठ स्वयं देंगे। समूचे संसार का कल्याण हो मैंने तो केवल मात्र इसी शुभ कामना से यह कार्य किया है। यदि इससे किसी भी जीवन को लाभ पहुँचा तो मैं अपने परिश्रम को सफल समझूंगा।

हां! अपने प्रेमी पाठकों से एक बात और कहनी है, वह यह कि मैंने यह रचना जैन तथा जैनेतर दोनों समुदाय को लक्ष्य में रखकर की है। क्योंकि ऐसे ग्रन्थ की जितने ही काल से मांग

चली आ रही थी। काश! समय और समाज की वह माग मेरी इस कृति से पूर्ण हो सके।

पिछले दिनों जब मैं हरिद्वार आदि जैनेतर धर्म प्रधान क्षेत्रों में गया तो वहा की भावुक जनता ने मेरा तथा मेरे उपदेश का बडा स्वागत किया। अनेक सम्मान रूपकों के अतिरिक्त मुझे, कृष्ण गीता, उपनिषद् आदि की अनेक प्रतिए भेंट की गई इसके उपलक्ष में जब मेरे से स्वधर्म परिचायक ग्रन्थ की माग हुई तो; सधन्यवाद मौन के अतिरिक्त मेरे पास कोई उत्तर नहीं था। "श्रीमद्गौतम-गीता" के शीघ्र प्रकाशन में इस प्रेरणा ने भी बडा काम दिया है। पुस्तक को यथाशक्य सुसस्कृत बनाने का पूरा प्रयत्न किया गया है, फिर भी यदि मुद्रण सम्बन्धी त्रुटियों के कारण पुस्तक में जो कमी आई हो सहृदय पाठक उसे सुधार कर पढने का प्रयत्न करें।

केदार बिल्डिंग
सब्जी मण्डी
देहली

मुनि अमृत
२१-१२-५१

सस्मृति-श्लोक

वसन्ततिलकावृत्तम्

श्री इन्द्रभूतिरिव मे लघुमद्गुरुस्स ।
घोसीश चन्द्र मुनि जिन्महिमा गरिष्ठः ॥
द्वौ गौतमोपपदमनाम युतौ हितात्म्यौ ।
गीतामिमां सुविहितेन समर्पयामि ॥

भावार्थ—भगवान् महावीर के प्रधान शिष्य श्री इन्द्रभूति जी तथा मेरे लघु गुरु भ्राता श्री घोसीरा मुनि जी ये दोनों ही महानुभाव "गौतम" संज्ञा से जगत में प्रसिद्ध हैं। अतः दोनों महामुनियों की सेवा में यह श्रीमद् गौतम गीता समर्पित करता हूं।

)(मुनि अमृत):(

:- अनुक्रमणिका :-

श्रीमत्कविरत्न उपाध्याय श्री अमर मुनि विरचिता

श्रीमद् गौतम-गीता

प्रारम्भ

ओ ३ म्

श्रीमद्गौतमगीता-माहात्म्यम्

श्रीमद्गौतमगीतायाःमाहात्म्यं पावनं परम् ।
यःशृणोति जनो भक्त्या तस्य पापं पलायते ॥

भावार्थ—श्रीमद्गौतम गीता महाशास्त्र के परम पावन माहात्म्य को जो मनुष्य भक्ति पूर्वक सुनता है उसके सम्पूर्ण पाप नष्ट हो जाते हैं ।

येनाधीता सुगीतेयं गौतमं प्रतिभाषिता ।
ध्यातास्तेन समे देवाः, शास्त्रं सर्वं प्रतोषितम् ॥

भावार्थ—जिस पुरुष या स्त्री ने गौतम-मुनि के प्रतिभाषित, 'गौतम-गीता' को पढ़ा या सुना है उसने सम्पूर्ण देवता पूज लिये हैं और समस्त शास्त्रों को सन्तुष्ट कर दिया है।

नश्यन्ति तदनर्थानि, जायन्ते पार्थ-सिद्धय' ।
येन-गौतम-गीतेयं श्रुताऽधीताऽथवा क्वचित् ॥

भावार्थ—जिसने इस श्रीगौतमगीता का अध्ययन या श्रवण किया उसके अनिष्ट नष्ट हो जाते हैं और सर्व-सफलता प्राप्त होती है।

वैराग्यं शुभावाणी पवित्रं कुरुते स्थलम् ।
किं पुनस्चेतनानां वै सौख्यं, मङ्गलं च दुर्लभम् ॥

भावार्थ—वैराग्यरस से भरी हुई यह 'गौतम गीता-रूप वाणी जिस स्थान पर पढ़ी जाती है वह स्थान भी पवित्र हो जाता है, फिर चेतन प्राणियों का तो सुख और मङ्गल क्या दुर्लभ है ?

श्रीमद्गौतमगीताया एक शब्दोऽपि कर्णयो' ।
प्रविष्टो हार्दिकं दोषं भस्मसात्कुरुते समम् ॥

भावार्थ—श्रीमद्गौतम गीता का एक भी शब्द कानों द्वारा हृदय में प्रविष्ट होकर के अन्दर के समस्त दोषों को भस्म कर देता है।

ज्ञानविज्ञान-संयुक्ता, समुक्ताशुद्धचेतसा ।

यत्रे यं गौतमी गङ्गा तत्र पूता समा स्थिरा ॥

भावार्थ—ज्ञान-विज्ञान के रहस्यों से संयुक्त, और शुद्ध हृदय से बहती हुई, जहा भी यह गौतमी-गगा झरती है वहाँ की समस्त-पृथ्वी पवित्र हो जाती है।

अस्या एकाक्षरं रत्नं मन्त्रतुल्यं परात्परम् ।

वर्द्धयत्यात्म-सम्पत्तिं लोकैश्वर्यस्य का कथा ॥

भावार्थ—इस श्री गौतम गीता का एक अक्षर भी परमोत्कृष्ट मन्त्र रत्न है जो आत्मसम्पत्ति को वढ़ाता है फिर सासारिक ऐश्वर्य का क्या कहना है।

गृहस्थेभ्यो धनं, धान्यं, विरक्तेभ्यस्तपोबलम् ।

सर्वकामं च विश्रामं गीतेयं साधयत्यरम् ॥

भावार्थ—यह गीता गृहस्थों के लिये धन धान्य और मुनिगण के लिये तपोबल आदि सम्पूर्ण कामनाओं और शान्ति को देती है।

आधिव्याधि समुत्पन्नं हरति दुःखं त्रिकालजम् ।

तथा स्वर्गापवर्गादिस्थानं हस्तगतायते ॥

भावार्थ—यह गीता, आधिव्याधि से उत्पन्न होने वाले त्रिकाल जन्य दु ख को हरती है और स्वर्ग तथा अपवर्ग आदि स्थानों को देती है।

य इमां पठति ध्यानात् शृणुते भावयत्यथ ।
तस्य नश्यन्ति पापानि परं पुण्यं प्रजायते ॥

भावार्थ—जो पुरुष इस गीता शास्त्र का ध्यान से पढ़ता सुनता या सुनाता है उसके सारे पाप नष्ट हो जाते हैं और परम पुण्य उत्पन्न होता है।

यः श्रद्धासुरिमां गीतां वितरेद्भक्ति भावतः ।
ज्ञान-यशः स कुर्वाणस्तरेत्संसार सागरात् ॥

भावार्थ—जो श्रद्धालु, इस गीता को भक्ति भाव से भक्तों में बांटेगा वह ज्ञान यश का भागी होकर संसार सागर से अवश्य ही पार होगा।

॥ श्री वीतरागायनम ॥

श्रीमद्‌गौतम-गीता

॥ प्रथमोऽध्यायः ॥

ज्ञानभानु विभासिक्तः सर्वज्ञो वीत कल्मषः ।
एकदा श्रीमहावीरः, चम्पाँ शिष्यैःसमागतः ॥ १ ॥

भावार्थ—ज्ञानरूपी सूर्य की कान्ति से भूषित, सर्वज्ञ, पाप रहित भगवान श्री महावीर स्वामी एक बार अपने शिष्य समुदाय सहित चम्पा नगरी में पधारे ।

देव दिव्य कर' सृष्टे महत्ताधार भूषित ।
शुभावस्थान-संस्थाने दिदेशादयनां विभुः ॥ २ ॥

भावार्थ—देवताओं की दिव्य शक्तियों द्वारा निर्मित, महान् माङ्गलिक शुभ समवशरण में भगवान् ने अपना पावन प्रवचन दिया ॥ २ ॥

देवादेवास्तथा दम्या साधु-साध्वी—समुच्चया ।
पशु पक्षि सहस्र च विलेभे धर्म-सम्पदा ॥ ३ ॥

भावार्थ—देवता देवी, नर नारी साधु साध्वी तथा पशु पक्षी आदि सहस्रों जीवों ने भगवान् के उपदेश से लाभ प्राप्त किया ॥ ३ ॥

अथाकर्ण्य शतैः कर्णैः शुद्धबुद्ध निवेदनाम् ।
प्रतिमा विभुता शिष्य' पप्रच्छैतच्च गौतम' ॥ ४ ॥

भावार्थ—भगवान का शुद्ध और प्रबोधक उपदेश अनन्त कानों से सुन कर भगवान् के प्रधान शिष्य परम मेधावी श्री गौतम मुनि ने ऐसा प्रश्न किया ॥ ४ ॥

गौतम उवाच

सर्वज्ञ' सर्वथा देव ! भवानेवेति निश्चितम् ।
अतो धर्मस्य वैशिष्ट्य शिष्टबोधाय शास्यताम् ॥ ५ ॥

गौतम बोले

भावार्थ—हे देव ! आप निश्चय ही सर्वज्ञ हैं इस लिये सम्यक् समुदाय के ज्ञान के लिये धर्म की विशेषता समझाइये ॥ ५ ॥

भगवानुवाच —

निगूढं धर्मकं तत्त्वं समुपास्यं समैर्जनैः ।
निशितैर्बुद्धिविज्ञानैः श्रूयता मुच्यते तराम् ॥ ६ ॥

भगवान् ने कहा

भावार्थ—भगवान बोले कि हे मुनि ! धर्म का तत्त्व बहुत ही गूढ है, इस को समझने का सब को प्रयत्न करना चाहिये ध्यान-पूर्वक सुनो, मैं इस तत्त्व का निरूपण करता हू ॥ ६ ॥

यत्पदार्थस्य मेधाविन् ! यः स्वभावोऽनुभाव्यते ।
तस्य धर्मः स एव स्यात्, इत्यखंडो विनिश्चयः ॥ ७ ॥

भावार्थ—हे मेधावी ! जिस वस्तु का जो स्वभाव होता है, उस वस्तु का वही धर्म होता है । यह अखण्ड सिद्धान्त है ॥ ७ ॥

यथाम्बुवह्निस्वभावौच शीतोष्णौस्तो महामुने !
तद्वदात्माऽपिविज्ञेयः सच्चिदानन्द विग्रहः ॥ ८ ॥

भावार्थ—हे महामुनि ! जिस प्रकार अग्नि का स्वभाव उष्ण और जल का स्वभाव शीत है उसी भाति आत्मा का स्वभाव भी सच्चिदानन्द है ॥ ८ ॥

त्रिकाले यस्य संभावो नाभावो यस्य संभवः ।
तदेवावेहि सत्तत्त्वं सत्यं शाश्वत मुत्तमम् ॥ ९ ॥

भावार्थ—हे मुनि ! जो तीनों कालों मे सदा विद्यमान रहता है और जिसका कभी अभाव नहीं होता, वही सत्य, शाश्वत तथा उत्तम 'सत्' तत्त्व है ॥ ९ ॥

सर्वेषु दविवर्गेषु सूर्यवद्भाति सर्वदा ।
सचेतयत्यहो राम्रे सा 'चित्' शक्ति र्महामते ॥१०॥

भावार्थ—हे बुद्धिमान ! जो सब प्राणियों में सूर्य के समान प्रकाशमान है तथा सब को सदा सचेत रखती है वही 'चित्' शक्ति समझो ॥ १० ॥

समन्तात् सर्वैर्भावै रात्मानं नन्दति स्वयम् ।
ह्रासोनाशो न यस्य स्यादानन्दः स विबुद्ध्यताम् ॥११॥

भावार्थ—हे मुनि । जो सब प्रकार से आत्मा को आनन्दित करता है तथा जिस का ह्रास और नाश नहीं है वही पूर्ण 'आनन्द' है ॥ ११ ॥

एतद्गुणत्रयं विप्र ! सर्वात्मस्वेव विद्यते ।
सच्चिदानन्द विज्ञानं नात्मतो याति भिन्नताम् ॥१२॥

भावार्थ—हे विप्र । सत् चित् और आनन्द ये तीनों गुण सब आत्माओं में विद्यमान हैं । इस लिये सच्चिदानन्द स्वरूप आत्मा से पृथक् नहीं है ॥ १२ ॥

अवगच्छत्यमात्मा यदात्मानं स वस्तुतः ।
तदा से नव सन्तुष्टो बोद्धव्य मन्यत्र शिष्यते ॥१३॥

भावार्थ—हे मुनि । जब आत्मा अपने वास्तविक स्वभाव को जान कर उस में सन्तुष्ट होता है तब उसे और कुछ जानना शेष नहीं रहता ॥ १३ ॥

न चाय जन्म संधत्ते कदाचिन्म्रियते नवा ।
हते देहेऽप्य नित्येऽस्मिन्नात्मनाशः कथंचन ॥१४॥

भावार्थ—हे गौतम । यह आत्मा न कभी जन्म लेता है और न कभी मरता है । इस नश्वर शरीर के नष्ट होने पर भी आत्मा का नाश नहीं होता ॥ १४ ॥

यथाहिर्जीर्णनिर्मोकं त्यक्त्वाप्नोति परं पुनः ।
तथैवात्मा विहायैतद्देहं यात्यन्य विग्रहं ॥१५॥

भावार्थ—हे मुनि । जैसे सर्प, एक कोंचुली को छोड कर दूसरी ग्रहण करता है, उसी प्रकार यह आत्मा भी एक देह को छोड कर दूसरी देह धारण करता है ॥ १५ ॥

अभेद्यो वज्र संघातै रच्छेद्यो निशितायुधैः ।
अदह्यो वह्निसंयोगै रात्मैपोऽशोष्य आशुगैः ॥१६॥

भावार्थ—हे मुनि ? यह आत्मा वज्रों से अभेद्य, तीक्ष्ण शास्त्रों से अछेद्य अग्नि संयोग से अदह्य और वायु से भी शोषित नहीं होती है ॥ १६ ॥

आत्मनैवाभिबोधव्यो बोध्यबोधोमहात्मनाम् ।
महात्मज्ञान विज्ञानैः परमात्मावबुध्यते ॥१७॥

भावार्थ—हे मुनि । आत्मा से महात्मा का बोध होता है और महात्मपद के ज्ञान से परमात्मा का बोध प्राप्त होता है ॥ १७ ॥

अखंडं तत्त्वमात्माऽयं ज्ञायता मात्मवित्सदा ।

ज्ञेय मेवं विशुद्धेन ज्ञानेनाखण्डितेन च ॥१८॥

भावार्थ—हे आत्मवित ! यह आत्मा एक अखंड तत्त्व है ऐसे समझना चाहिये और अखंडित शुद्ध ज्ञान के द्वारा ही इस का बोध होता है ॥ १८ ॥

'द्वादशाङ्गी' समध्येया ज्ञेया ध्येया च सर्वदा ।

एतया शुद्धविज्ञानं प्राप्यते नात्र संशयः ॥१९॥

भावार्थ – हे मुनि ! द्वादशाङ्गी वाणी का अध्ययन मनन और ध्यान सदा करना चाहिये । इस के द्वारा ही विशुद्ध ज्ञान की प्राप्ति होती है इस मे कोई संशय नहीं ॥ १९ ॥

द्वादशाङ्गीति वाणीयं संसारे व्याप्य तिष्ठति ।

मदीय मम संबोधे स्फुरत हृदय मित्यदः ॥२०॥

भावार्थ हे मुनि ! यह द्वादशाङ्गी वाणी समस्त संसार में व्याप्त है । वह मेरे केवल ज्ञान में स्पष्ट झलक रहा है ॥ २० ॥

निःस्वार्थ त्यागिनां स्वान्ते निर्मले निश्चले मुने ।

धर्मोऽध्यास्तेतरां नित्यं तेषां संगो विधीयताम् ॥२१॥

भावार्थ – हे मुनि ! निःस्वार्थ त्यागी पुरुषों के निर्मल तथा निश्चल हृदय में धर्म निवास करता है । अतः उनकी संगति करनी चाहिये ॥ २१ ॥

विवेको धर्मतत्त्वस्य सौम्यात्मास्तीति निश्चितम् ।
अतः सर्वाणिकार्याणि कार्याणि सुविवेकतः ॥२२॥

भावार्थ—हे सौम्य । विवेक, धर्म की आत्मा-है अत प्रत्येक प्राणी को अपना प्रत्येक कार्य विवेक-पूर्वक करना चाहिए ॥२२॥

अहिंसा सत्य मस्तेयं ब्रह्मचर्या परिग्रहौ ।
पञ्चतत्वात्मकं दिव्यं धर्मस्य -सुन्दरं वपुः ॥२३॥

भावार्थ हे मुनि । अहिंसा, सत्य, अस्तेय, ब्रह्मचर्य और अपरिग्रह इन पाच तत्त्वों से धर्म का सुन्दर शरीर बना है ॥२३॥

क्षमा तोषार्जवादीनि मार्दवं लाघवं तथा ।
संयमश्च तपोज्ञानं धर्माङ्गानीति गौतम ॥२४॥

भावार्थ - हे गौतम । क्षमा सन्तोष, आर्जव, मार्दव, लाघव, सयम, तप और ज्ञान आदि धर्म के पवित्र अ ग स्वरूप है ॥२४॥

परो माङ्गलिको धर्मः सर्वजीव सुखावहः ।
सेवनेनास्य लोकानां सर्वापद्याति नाशताम् ॥२५॥

भावार्थ—हे मुनि । धर्म परम माङ्गलिक वस्तु है । यह सब प्राणियों को सुख देने वाला है इस के सेवन करने से सम्पूर्ण आपत्तिया नष्ट हो जाती हैं ॥ २५ ॥

सर्वसिद्ध्याकरो धर्मः कल्पपादप सन्निभः ।
कामदः कामधेनुश्च चिन्तामणिस्सुदुर्लभः ॥२६॥

भावार्थ – हे मुनि ! धर्म, सब सिद्धियों का भंडार है। कामनाओं को पूर्ण करने के लिए कल्पवृक्ष और कामधेनु के समान है यही सुदुर्लभ चिन्तामणि है ॥ २६ ॥

गुरुर्मित्रं पिता, माता भ्राता भ्रातादिमश्च रः ।
धर्मादन्यो न लोकेऽस्मिन् कोऽपिमित्रायशायकः ॥२७॥

भावार्थ – हे मुनि । धर्म ही सच्चा गुरु, मित्र पिता माता भाई और हितकारी बन्धु है। धर्म से बढ़ कर इस संसार में कोई भी रक्षक नहीं है ॥ २७ ॥

निजाहितं प्रकुर्वन्ति यानि कर्माणि तानि च ।
परेषां नैव कार्याणि धर्मस्यदं सुशिक्षणम् ॥२८॥

भावार्थ—हे मुनि । जो २ कर्म अपने लिये अहितकर हैं वे दूसरों के लिय नहीं करने चाहियें। यही धर्म की शिक्षा है॥२८॥

अहिंसा संयमश्चैव तपश्चस्यादयम्भुधो ।
सत्स्वपि भद्रधर्मेषु वशिष्ठ्य चाप्तविपद ॥२९॥

भावार्थ—हे गौतम । अन्य और धर्म रूपकों के रहते हुए भी, अहिंसा संयम और तप में अधिक विशेषता है ॥२९॥

लघ्वलघ्वादि जीवानाँ मदोपित्वादाहिंसनम् ।
असत्यादत्तयोस्त्याग एष धर्मश्चिरंतन ॥३०॥

भावार्थ-हे गौतम ? छोटे बडे किसी भी निर्दोष जीव की हिंसा न करना तथा असत्य और चोरी का त्याग यही पुरातन धर्म है ॥३०॥

जन्म मृत्यु-प्रवाहेऽस्मिन समेषां धर्मसंश्रयः ।
प्रतिष्ठा कीर्त्तिमूलं च शरणं सर्वदेहिनाम् ॥३१॥

भावार्थ हे मुनि । जन्म और मृत्यु के इस वहाव मे केवल धर्म ही एक आश्रय है । यही प्रतिष्ठा, कीर्ति का मूल है तथा सब के लिये शरण स्वरूप है ॥३१॥

पाथेयमन्तरा पान्थो यथा काष्टायतेऽध्वनि ।
तथा धर्म विना जीवः परलोकेऽति पीड्यते ॥३२॥

भावार्थ हे गौतम । जिस प्रकार भोजन के विना मार्ग में राही दुखी होता है, उसी प्रकार धर्म के विना यह जीव परलोक मे कष्ट पाता है ॥३२॥

दुरध्वे यायिनो लोके यानिकस्यास्ति या दशा ।
सा दशा धर्महीनस्य सत्पथा त्पतितस्य च ॥३३॥

भावार्थ—हे मुनि । दुर्मार्ग मे जाने वाले गाडीवान की जो दुःखमय दशा होती है, वही दशा सन्मार्ग से पतित धर्म हीन पुरुष की होती है ॥३३॥

अतो यावज्जरा नैति यावन्नायान्ति व्याधयः ।
यावन्मात्रा अहीना स्युः तावद्धर्मं समाचरेत् ॥३४॥

भावार्थ हे गौतम ! जब तक बुढ़ापा नहीं आता और जब तक व्याधियां नहीं घेरती तथा जब तक इन्द्रियां सशक्त हैं तब तक धर्म का आचरण करना चाहिये ॥३४॥

सर्व पापानि संत्यज्य श्रद्धां कृत्वा सुनिश्चलाम् ।
बुद्धिमान् सततं कुर्यात् धर्माचारं विमुक्तये ॥३५॥

भावार्थ — हे मुनि ! सब पापों को छोड़कर तथा अपनी श्रद्धा को अटल बनाकर बुद्धिमान पुरुष को मुक्ति के लिये सदा धर्माचरण करना चाहिये ॥३५॥

जन्मान्तर समेतस्य नाशात् बाधककर्मणः ।
दुर्लभं मानुषं जन्म लभते कोऽपि भाग्यवान् ॥३६॥

भावार्थ — हे गौतम ! जन्मान्तर से प्राप्त हुए बाधक कर्म के नाश से कोई भाग्यवान ही दुर्लभ मनुष्य जन्म को प्राप्त होता है ॥३६॥

लब्ध्वापि मानवीं जातिं दुर्लभं धर्मसेवनम् ।
येन प्रवर्द्धतेऽजस्रं तपोऽहिंसा क्षमादिकम् ॥३७॥

भावार्थ — हे मुनि ! मनुष्य जाति को प्राप्त कर के भी तप अहिंसा और क्षमा आदि गुणों की वृद्धि करने वाले धर्म का सेवन करना अति दुर्लभ है ॥३७॥

धर्म वृत्तस्य सम्मूलं विनम्रत्वं हि गौतम !
यदवाप्य परं ज्ञानं दधते देहिनोऽनिशम् ॥३८॥

भावार्थ—हे गौतम । धर्मवृक्ष का मूल नम्रता ही है, जिसको प्राप्त करके समस्त देहधारी जीव निरन्तर परम ज्ञान को धारण करते हैं ॥ ३८ ॥

यस्यात्मा राजते शुद्धः तस्य धर्मोऽपि निश्चलः ।
तेन प्रदीप्यते जीवो घृतोद्दीप्ताग्नि पिण्डवत् ॥३९॥

भावार्थ—हे गौतम । जिसकी आत्मा शुद्ध होती है उसका धर्म भी निश्चल होता है । उस धर्म के द्वारा यह जीव घृत से उद्दीप्त अग्नि की भांति तेजस्वी होता है ॥ ३९ ॥

ये जीवाः धर्मतत्त्वज्ञाः भुक्त्वैहिक सुखोन्नतिम् ।
अन्ते यान्ति समं देवैः खेलितुं च सुरालयम् ॥४०॥

भावार्थ हे मुनि । तत्त्व का आचरण करने वाले जीव, लौकिक सुखों का उपभोग करके अन्त मे देवों के साथ खेलने के लिये देव लोक को जाते हैं ॥४०॥

लक्ष्यीकृत्य पदं मोक्षं सन्ति ये विपयैषिणः ।
तेषां मनःस्थलम्थाशा शून्ये पुष्प-विडम्बना ॥४१॥

भावार्थ – हे मुनि मोक्ष पद को लक्ष्य करके जो जीव विषयों के इच्छुक हैं, उनके मन की आशा आकाश में पुष्प-विडम्बना के समान व्यर्थ है ॥ ४१ ॥

क्षमया सर्वे सन्तापात् मुच्यन्त धर्मधारिणः ।
इति साधुगृहस्थेभ्य' शिक्षैषाऽस्ति सुखावहा ॥४२॥

भावार्थ—हे मुनि ! क्षमा के द्वारा धर्म का धारण करने वाले सब सन्तापों से मुक्त हो जाते हैं। यह शिक्षा साधु और गृहस्थ, सब के लिये सुखदायी है ॥ ४२ ॥

बलिषु क्षमनं भीत्या नैषैषा गण्यते क्षमा ।
निर्बलेऽभयसंदानं 'क्षमा वीरस्य भूषणम्' ॥४३॥

भावार्थ—हे मुनि ! बलवान का भय से क्षमा करना क्षमा नहीं गिनी जाती, परन्तु निर्बलों का अभयदान देना ही वीर का भूषण क्षमा है ॥ ४३ ॥

क्रोधात्संजायते मानो मानान्मायाभिभूयते ।
लोभो भवति मायाया'ल्लोभाद् बुद्धिविभ्रम' ॥४४॥

भावार्थ—हे गौतम ! क्रोध से मान उत्पन्न होता है, मान से माया माया से काम और लोभ से बुद्धि में भ्रान्ति उत्पन्न हो जाती है ॥ ४४ ॥

बुद्धिविभ्रमतः सौम्य ! हिंसाया अधिकारणम् ।
हिंसैव सर्वपापानां निदानं चे ति निर्णय' ॥४५॥

भावार्थ—हे सौम्य ! बुद्धि की भ्रान्ति हिंसा आदि का कारण है। हिंसा सब पापों का बीज है ऐसा स्पष्ट निश्चय है ॥ ४५ ॥

यः स्वतः कुरुते हिंसां कारयत्यथवाऽपरैः।
किञ्चानुमोदयत्येतां स वपत्यंहसोंऽकुरम् ॥४६॥

भावार्थ—हे गौतम जो स्वय हिंसा करता है, अथवा अन्य से करवाता है और करते का समर्थन करता है, वह मनुष्य पाप का अ कुर बोता है ॥४६॥

सर्वे जीवैषिणो जीवाः न मृत्युं कश्चिदीहते।
इतिज्ञात्वा बुधाः सर्वे न कुर्युर्जीव हिंसनम् ॥४७॥

भावार्थ—हे मुनि। सम्पूर्ण प्राणी जीना चाहते हैं। मरना कोई भी नहीं चाहता, इस लिए किसी भी बुद्धिमान् को जीव हिंसा नहीं करनी चाहिए ॥४७॥

निस्पृहः साधको नित्यं जगति प्राणिनोऽखिलान्।
आत्मवत्सर्व मालोच्य न हि वैरायते क्वचित् ॥४८॥

भावार्थ— हे गौतम ! निस्पृह साधक ससार में सब प्राणियों को आत्मवत् समझ कर किसी भी प्राणी के साथ कभी वैर नहीं करता ॥४८॥

स्थिरानीराग्निवायूनां वृक्षवीजतृणाङ्गिनाम्।
अस्ति जीवत्व मेतेषां शरीराणि पृथक् पृथक् ॥४९॥

भावार्थ—हे मुनि। पृथ्वी, अप, तेज, वायु, तथा वृक्ष, बीज सम्पूर्ण वनस्पतियों मे जीव की सत्ता है और इनका शरीर एक दूसरे से पृथक् है ॥४९॥

सर्वसारोपदेशानामेष सारो निगद्यते ।

अहिंसापरमो धर्मो नातः परतरं क्वचित् ॥५०॥

भावार्थ— हे मुनि ! सब सार उपदेशों का एकमात्र यही सार है कि अहिंसा ही परम धर्म है इस से बढ़ कर और कुछ नहीं है ॥५०॥

नानीत्याऽदर्शयत्येषा त्वहिंसा भयकारणम् ।

अतः कापुरुषाः सौम्य! कर्तुं नार्हा न तद्व्रतम् ॥५१॥

भावार्थ—हे सौम्य ! अनीति से भयभीत होना अहिंसा नहीं सिखाती। अतः अन्याय से भयभीत होने वाले कायर पुरुष अहिंसा का पालन नहीं कर सकते ॥५१॥

अहिंसाभूषणं सत्यं सत्यं चालोचितं वचः ।

अप्रियं सत्यमप्येवं न न वाच्यं मुनि गौतम ! ॥५२॥

भावार्थ—हे गौतम ! अहिंसा का भूषण सत्य है और विचार कर बोला गया वचन ही सत्य है। अतः अप्रिय सत्य कभी नहीं बोलना चाहिए ॥५२॥

कस्याञ्चिदप्यवस्थायां हैंसिकं नानृतं वदेत् ।

तथा च वादयेन्नान्यैः रित्येवं शास्त्र सम्मतम् ॥५३॥

भावार्थ—हे मुनि ! किसी भी अवस्था में हिंसाकारी असत्य नहीं बोलना चाहिए तथा ऐसा असत्य बोलने की किसी को प्रेरणा भी नहीं देनी चाहिए ॥५३॥

सीमितं परिपूर्णञ्च तथाऽसंदिग्धकं वचः ।
स्पष्टानुभूतिसंयुक्तं वाच्यं शश्वच्च सन्मते ! ॥५४॥

भावार्थ—हे सुमति । सीमित परिपूर्ण, सन्देह-रहित वचन पूरे अनुभव के अनन्तर बोलना चाहिए ॥५४॥

स्वयं धीरः परिज्ञाय गुरोर्वाधीत्य सन्ततम् ।
हितोपदेशनं दद्यात् निन्द्यं नाचार माचरेत् ॥५५॥

भावार्थ—हे मुनि । धैर्यशाली मनुष्य को चाहिए कि सोच कर अथवा गुरुजनों से समझ कर हित का उपदेश दे । कभी दूषित आचरण नहीं करना चाहिये ॥५५॥

साधकै र्मानवैर्हेयो निष्प्रमाणः परिग्रहः ।
वर्द्धयत्येष लोभं हि नरक पीड़ाकरं परम् ॥५६॥

भावार्थ—हे गौतम । साधक पुरुष को प्रमाण रहित परिग्रह अर्थात् वस्तुसंग्रह का परित्याग कर देना चाहिए, क्योंकि यह परिग्रह नरक आदि की महान् पीड़ाओं को देने वाले लोभ को बढ़ाता है ॥५६॥

कच्चिद्वस्तुनि सम्मोह एव सौम्य ! परिग्रहः ।
धर्मोपकरणं नैव ज्ञेयं तस्य विशेषणम् ॥५७॥

भावार्थ—हे सौम्य । किसी भी वस्तु में मोह करना ही परिग्रह कहलाता है । धर्म के उपकरणों में लोभ और मोह नहीं होता, इस लिये वे परिग्रह नहीं हैं ॥५७॥

हिंसैव सर्वपापानां, कर्मणां द्रोह मोहकम् ।
रोगाणां रोगराजश्च लोभः सर्वगुरुर्मत ॥५८॥

भावार्थ—हे मुनि ! सब पापों का गुरु हिंसा है तथा सब कर्मों का गुरु द्रोह का मोह है। इसी भांति यक्ष्मा सब रोगों का राजा है और लोभ इन सब का गुरु है ॥५८॥

दुरितानां प्रसूर्हिंसा, लोभस्तेषां तथा पिता ।
द्वावप्येतौ परित्याज्यौ, मेधाविन् ! सौख्य लब्धये ॥५९॥

भावार्थ—हे बुद्धिमान ! हिंसा समस्त पापों की जननी है और लोभ सब पापों का बाप है। अतः सुख की प्राप्ति के लिये ये दोनों ही छोड़ देने चाहियें ॥५९॥

लोभाविष्टं मनो मोदं बिनक्ति प्राणिसौख्यदम् ।
जायते बुद्धिवैकल्यं तस्माल्लोभं परित्यजेत् ॥६०॥

भावार्थ—हे मुनि ! लोभी मन समस्त प्राणियों को सुख देने वाले आनन्द से अनाथ हो जाता है। लोभ से बुद्धि में विकलता आ जाती है। अतः लोभ का परित्याग कर देना चाहिए ॥६०॥

लोभो मूर्च्छं जनं कृत्वा भ्रामयत्यत्र सर्वदा ।
करोत्यनर्थकृत्याय लोकवृत्तिञ्च दूषिताम् ॥६१॥

भावार्थ——हे सौम्य ! लोभ मनुष्य को लालची बना कर संसार में भटकाता है और अनर्थ करने के लिए लोकवृत्ति को दूषित कर देता है ॥६१॥

संसृतौ यो जनोवाञ्छेत् स्थायिकानन्द कन्दनम् ।
लोभं हित्वा स धर्मज्ञः सन्तोषासेवनं श्रयेत् ॥६२॥

भावार्थ—हे गौतम । संसार मे जो मनुष्य स्थायी आनन्द के समूह को चाहता हो, वह मर्मज्ञ, लोभ को छोड़ कर सन्तोष का आश्रय ग्रहण करे ॥६२॥

सन्तोषे सदनं श्रीणां चिरस्थित्या सुशोभते ।
यदधिष्ठाय जीवोऽयं महानन्दं समश्नुते ॥६३॥

भावार्थ—हे मुनि, सन्तोष में लक्ष्मी का चिरन्तर निवास है, जिस में निवास कर के यह जीव परम आनन्द को भोगता है ॥६३॥

यल्लोके लोकते किञ्चत् सौम्य ! स्वाभाविकं सुखम् ।
तस्य मूलं विजानीहि सन्तोषः परमं धनम् ॥६४॥

भावार्थ – हे सौम्य । संसार में जो स्वाभाविक सुख दृष्टिगोचर होता है, उसका मूल परम धन सन्तोष को ही जानिये ॥६४॥

मनसो येन चाञ्चल्य संयमेन वशीकृतम् ।
स एव सौम्य ! शुद्धस्य सन्तोषस्यैक साधकः ॥६५॥

भावार्थ—हे सौम्य । जिसने संयम के द्वारा मन की चञ्चलता को वश मे कर लिया है, वही सत्पुरुष एकमात्र सन्तोष का साधक है ॥६५॥

दुर्दम्यारिर्मनो येन नीतं बन्दीव वश्यताम्।
स च संसेवितः सर्वैः सन्तोषराष्ट्रनायकः ॥६६॥

भावार्थ—हे महात्मा! जिसने मनरूपी दुर्दम्य शत्रु को बन्दी की भांति वश में कर लिया है वही पुरुष सब के द्वारा पूजित सन्तोष-राष्ट्र का नायक है ॥६६॥

विलासीदं मनो योगिन्निन्द्रियाणि विलासिनेः।
प्रेरयित्वा समान् जीवान्, पीडयत्येव सन्ततम् ॥६७॥

भावार्थ—हे योगिन्! यह विलासी मन इन्द्रियों को अपने प्रबन्ध बल के द्वारा प्रेरित करके सब जीवों को दुखी करता है ॥६७॥

अप्रेया भयतो नित्यं तथैव सुख दुःखयोः।
बन्धस्य मोक्ष मार्गस्य मनोमूलं महामते! ॥६८॥

भावार्थ – हे महामते! कल्याण, अकल्याण, सुख दुःख और बन्ध मोक्ष इन सब का मूल कारण यह मन ही है ॥६८॥

अभ्यासेन वशीभूतं मनोयात्यनुशासनम्।
तदभ्यासस्य संप्राप्तिः सतां सङ्गेन जायते ॥६९॥

भावार्थ—हे गौतम! अभ्यास द्वारा वशीभूत मन अनुशासन में आता है और अभ्यास की प्राप्ति साधुओं की सङ्गति से होती है ॥६९॥

मंसाराब्धि-निमग्नानां जनानां तारणे तरी ।
तोरणं मुक्ति लोकस्य संगतिः सुमते ! सताम् ॥७०॥

भावार्थ—हे सुमति । ससार सागर मे डूबे हुए मनुष्यों के लिये नाव के समान तारक, तथा मुक्तिलोक का प्रधान द्वार सज्जन पुरुषों की सङ्गति ही है ॥७०॥

दुर्वश्या मानसी वृत्तिः चञ्चला वेगितत्वतः ।
सतां सङ्गप्रभावेण योगीव स्थीयते चिरम् ॥७१॥

भावार्थ—हे गौतम । यह मानसी वृत्ति बडी चञ्चल और दुर्वश्य है । सत्सगति के प्रभाव से यह योगियों के समान चिर-काल के लिये स्थिर हो जाती है ॥७१॥

सर्वज्ञानां रहस्यं यत् तदुक्तं ह्यत्र गौतम ! ।
एतत्संदेश मादाय लोकोद्धाराय यत्यताम् ॥७२॥

भावार्थ—हे गौतम । सर्वज्ञों के द्वारा कथित जो रहस्य है वह मैंने तुम से कहा है । इस सन्देश को ग्रहण करके लोक कल्याण का प्रयत्न करो ॥७२॥

ओं शमितिश्रीमत्कविरत्न-उपाध्यायश्रीअमृतमुनि- विरचिताया श्रीमद्गौतमगीताया "धर्मतत्त्वयोगो नाम" प्रथमोऽध्याय

॥ द्वितीयोऽध्यायः ॥

गौतम उवाच—

श्रोतुमिच्छामि सर्वज्ञ ! गार्हस्थ्यं धर्ममुत्तमम्

कृपया तस्य तत्त्वस्य क्रियतां सन्निरूपणम् ॥ १ ॥

भावार्थ— हे भगवान् ! मैं गृहस्थ धर्म को सुनना चाहता हूँ कृपया उसके तत्त्वों का निरूपण करने का अनुग्रह करिए ॥१॥

भगवानुवाच—

जगत्यां ये महात्मानः सम्भूता लोक हेतवे ।
तेषां सौम्यसुगार्हस्थ्यं पवित्राः जन्म भूमयः ॥ २ ॥

भावार्थ—हे सौम्य । ससार में जितनी भी विभूतिया उत्पन्न हुई हैं, उनकी पवित्र जन्मभूमिया गृहस्थाश्रम ही है ॥२॥

यथैवं भासते नित्ये ब्रह्मज्ञानेऽतिनिर्मले ।
तथा वच्मि गृहस्थानां धर्मतत्वं विशारद ! ॥ ३ ॥

भावार्थ—हे विशारद । जैसा भी मेरे नित्य निर्मल, केवल ज्ञान मे भासित हो रहा है उस शुद्ध गृहस्थ तत्त्व को कहता हू ॥ ३ ॥

गृह्णाति साधनं पूर्णं जीवनस्थिति पूरकम् ।
तद्‌गृहं, तत्र तिष्ठन्तो गृहस्थास्ते महामुने ! ॥ ४ ॥

भावार्थ—हे महामुने । घरेलू जीवन-स्थिति के साधनों को ग्रहण करने वाले स्थान को 'गृह' करते हैं। जो उसमें रहते हैं उन्हें गृहस्थ कहते हैं ॥ ४ ॥

ब्रह्मकाले समुत्थाय सद्‌गृहस्थः सुसंस्कृतः ।
श्रद्धया सर्वतः पूर्वं परमेशं स्मरेत्सदा ॥ ५ ॥

भावार्थ—हे मुनि । ब्रह्म मुहूर्त्त में उठकर, सस्कार-सहित सद्‌गृहस्थ को सर्वप्रथम परमात्मा का स्मरण करना चाहिये ॥५॥

शौचादिना विनिर्वर्त्य विवेकविधि पूर्वकम् ।
पुनर्ध्यान स्थितो धीमान् परेशं स्तौति नित्यशः ॥ ६ ॥

भावार्थ—हे मुनि ! बुद्धिमान् गृहस्थ शौचादि कर्म से विवेक पूर्वक निवट कर प्रभु का नित्य ध्यान करता है ॥ ६ ॥

शुचिस्संभूय बाह्यान्तः समीपाद् गुरु सन्निधिम् ।
ध्यानावस्थित चित्तेन प्रणमेत्पाद पङ्कजम् ॥ ७ ॥

भावार्थ—हे मुनि ! बाह्याभ्यन्तर शुद्धि पूर्वक गुरु के चरणों में आवे और ध्यानपूर्वक गुरुचरण कमलों में प्रणाम करे ॥ ७ ॥

निशम्योत्कट भावेन गुरोर्माङ्गलिकंवच ।
नयना जीविकावृत्ति प्राप्तोऽस्म्येति सर्वदा ॥ ८ ॥

भावार्थ—हे मुनि ! उत्कृष्टभाव से गुरुओं के माङ्गलिक वचन सुन कर, बुद्धिमान् गृहस्थ नीति-पूर्वक जीविका वृत्ति की खोज करता है ॥ ८ ॥

यथास्ततस्तत पूर्वं भोज्यं शुद्ध च भोजनम् ।
कृत्वा सायन्तनं धर्मं स्मरन्नीशं स्वपित्यभिः ॥ ९ ॥

भावार्थ—हे गौतम ! सूर्यास्त होने से पहले ही शुद्ध भोजन करना चाहिये । अनन्तर सायंकालीन धर्म कार्य करके सद्गृहस्थ ईश्वर का स्मरण करता हुआ निर्भय शयन करता है ॥ ९ ॥

सूक्ष्मात्सूक्ष्मतरं सौम्य ! दैनिकं कृत्य मीरितम् ।
श्रूयतां शान्तचित्तेन किमप्यग्रे विवेचनम् ॥१०॥

भावार्थ—हे सौम्य ! यह तो यहां पर, मैंने सूक्ष्म से सूक्ष्म दैनिक कृत्य कहा है। अब कुछ इससे आगे भी सुनो ॥ १० ॥

सद्गृहस्थः सदान्यार्य्या, मार्ग मेवावलम्बते ।
नहि याति कदाप्येष गर्हितेन पथा वृथा ॥११॥

भावार्थ—हे मुनि सद् गृहस्थ सदा न्यायमार्ग का ही अनुसरण करता है। वह कभी भी निन्दनीय व्यर्थ मार्ग पर नहीं चलता ॥ ११ ॥

पूज्यैः कौटुम्बिकैश्चैव वर्तते शिष्टतान्वितः ।
नह्यभद्रं कदाप्येष चिन्तयत्यन्य जन्मिनाम् ॥१२॥

भावार्थ—हे मुनि। यह सद्गृहस्थ, पूज्यजन और परिवार के सभी मनुष्यों से सभ्यता का वर्ताव करता है। कभी भी दूसरे प्राणियों का अनिष्ट नहीं सोचता ॥ १२ ॥

शिष्टाचारविहीनं च जीवनं देहधारिणाम् ।
सुखं, सौभाग्य कल्याणे, नाप्तुमर्हं कदाचन ॥१३॥

भावार्थ—हे मुनि। शिष्टाचार विहीन जीवन, सुख, सौभाग्य और कल्याण प्राप्त करने में समर्थ नहीं होता ॥ १३ ॥

यस्मिन् गृहे न पूज्याना मादरस्त्यान्महामुने ।
नतद्गृहेर्द्र भवत्यत्र फलितं पुष्पितं क्वचित् ॥१४॥

भावार्थ—हे महामुनि ! जिस घर में पूज्य-पुरुषों का आदर नहीं होता वह घर कभी फूलता फलता नहीं ॥ १४ ॥

पितरौ बान्धवः पुत्रा, श्चत्वारःसन्ति संसृती ।
गृहस्थस्याश्रमस्यैते मुख्यस्तम्भा महामुने ॥१५॥

भावार्थ—हे महामुने ! माता पिता भाई और पुत्र ये चार गृहस्थ भवन के मुख्य स्तम्भ हैं ॥ १५ ॥

ज्ञातिसम्बन्धिनः सर्वे मित्राण्यादि स्तथापरे ।
सहिनोङ्गा गृहस्थस्य नयेनैते सुखं प्रदा ॥१६॥

भावार्थ—हे गौतम ! ज्ञाति सम्बन्धी मित्र आदि सब गृहस्थ के सहायक अङ्ग हैं । इन सब के नियम-पूर्वक रहने से सुख प्राप्त होता है ॥ १६ ॥

लालनं पालनं चैव सन्ततेः शिक्ष शिक्षणम् ।
पितृभिःकारयीयंतन् कर्त्तव्यं च विशेषतः ॥१७॥

भावार्थ—हे मुनि ! माता पिता को अपनी सन्तान का लालन पालन और शिक्षशिक्षण विशेष प्रकार से करना और कराना चाहिये ॥ १७ ॥

सन्ततिर्यस्य मूर्खा स्याद् गृहस्थस्य विचक्षण ।
कीर्त्तेरभ्युदयात्तस्य पातो भवति नित्यशः ॥१८॥

भावार्थ– हे विचक्षण । जिसकी सन्तान मूर्ख होती है, उसकी कीर्त्ति और उन्नति का पतन हो जाता है ॥ १८ ॥

पित्रादि पुण्यलोकानां शासने दत्तमानसाः ।
भवन्ति सभ्यसन्ताना अन्वयोन्नति कारकाः ॥१६॥

भावार्थ—हे मुनि । माता पिता और पूज्य पुरुषों के शासन में रहने वाली सन्तान, वंश की उन्नति करने वाली होती है ॥ १६ ॥

जीविकोपार्जनारिक्तः समयो धर्म संग्रहे ।
व्यतीतव्यो महाभाग ! गृहस्थैरुदयैपिभिः ॥२०॥

भावार्थ– हे महाभाग । उन्नति के इच्छुक गृहस्थों को, जीविका उपार्जन से अतिरिक्त समय को धर्म संग्रह में व्यतीत करना चाहिये ॥ २० ॥

गृहस्थो गेहिधर्मस्य पालनं न करोति यः ।
स्वकर्तव्य वहिर्भूतः पतति न्याय मार्गतः ॥२१॥

भावार्थ – हे मुनि । जो घर में रहता हुआ, गृहस्थ के कर्तव्य का पालन नहीं करता वह न्याय मार्ग से गिर जाता है ॥ २१ ॥

आत्मशक्त्यनुसारेण साहाय्यमन्यदेहिनाम् ।
कर्तव्यमिति सुज्ञानां कर्तव्यं परमं मुने ! ॥२२॥

भावार्थ—हे मुनि ! अपनी शक्ति के अनुसार अन्य पुरुषों की सहायता करना सुज्ञ पुरुषों का परम कर्तव्य है ॥२२॥

धनजनादिवस्तूनां गर्वस्सर्वं भयावहः ।
प्रतिकृत्य मनुष्ठेयं शुद्धयत्नानुसारतः ॥२३॥

भावार्थ—हे मुनि ! धन जन आदि वस्तुओं का घमंड भयानक है अतः प्रत्येक कार्य शुद्ध प्रयत्न से करना चाहिये ॥ २३ ॥

कषायान् पर सम्पत्ती रीर्ष्याभावं त्यजन्ति ये ।
निन्दां मात्सर्यदोषांश्च स एवात्र वरानराः ॥२४॥

भावार्थ—हे मुनि ! कषाय परसम्पत्ति से ईर्ष्या, निन्दा और मात्सर्य दोष को इनका त्याग करते हैं वे ही श्रेष्ठ पुरुष हैं ॥२४॥

सर्वानन्दे निजानन्दं गेहिनोऽनुभवन्ति ये ।
स एव सुख सम्पत्तेः धर्मस्य चाधिकारिणः ॥२५॥

भावार्थ—हे मुनि ! जो दूसरों के सुख में अपना सुख समझते हैं वे ही गृहस्थ सुख सम्पत्ति और धर्म के अधिकारी हैं ॥२५॥

ममास्त्येवमतः सत्यं यस्य नास्तीतिचेतना ।
यत्सत्यं तन्ममास्त्येव स प्राज्ञः स विचक्षणः ॥२६॥

भावार्थ—हे मुनि । यह मेरा है अत' सत्य है जिसकी ऐसी बुद्धि नहीं है और जो सत्य है वह मेरा है ऐसी बुद्धि है, वही प्राज्ञ और विचक्षण है ॥२६॥

यत्र स्त्री पुरुषौ प्रीत्या सन्तिष्ठेते महामुने !
तद्गृहं स्वर्ग-संवासो लक्ष्मीक्रीड़ास्थलं तथा ॥२७॥

भावार्थ—हे महामुनि । जिस घर में स्त्री-पुरुष दोनों प्रेम से रहते हैं, वह घर स्वर्ग का निवास स्थान है और लक्ष्मी का क्रीड़ा स्थल है ॥२७॥

सर्वविश्वात्म भावत्वं समौदार्यं समुन्नतम् ।
सङ्कीर्णत्वस्य सन्त्याग उत्तमानां सुलक्षणम् ॥२८॥

भावार्थ—हे मुनि । सर्व विश्व में आत्मभाव रखना ही उन्नत उदारता है । सङ्कीर्णता का परित्याग करना उत्तम पुरुषों का लक्षण है ॥२८॥

राष्ट्र विश्वास पात्रत्वं समुपास्य सुगेहिभिः ।
स्वग्रामपत्तनादीनां न सह्यः स्यान्निरादरः ॥२९॥

भावार्थ - हे मुनि । प्रत्येक गृहस्थ को, राष्ट्र के प्रति विश्वास पात्र होना चाहिये । अपने ग्राम शहर आदि का निरादर भी नहीं सहन करना चाहिये ॥२९॥

गौतम उवाच—

व्रतानि कानि सर्वज्ञ ! विधेयानि सुगेहिभिः ।
तत्सर्वं श्रोतुमिच्छामि लोककल्याण हेतवे ॥२०॥

भावार्थ—हे सर्वज्ञ ! गृहस्थों के धारण करने योग्य विशेष व्रत कितने हैं ? लोक-कल्याण के लिये मैं उन्हें सुनना चाहता हूँ ॥२०॥

भगवानुवाच—

द्वादशात्मव्रतं तत्र पञ्चकाणुव्रतं मुने !
चतुः शिक्षा गुणेत्रीणि क्रमशो वच्मि तच्छृणु ॥२१॥

भावार्थ—हे मुनि ! गृहस्थ के १२ व्रत होते हैं उनमें ५ अणुव्रत ४ शिक्षाव्रत और ३ गुणव्रत होते हैं । क्रम से उनका व्याख्यान सुनो ॥२१॥

रक्ष्याः सर्वे तथाप्यत्र स्थूला जीवा विशेषतः ।
स्थूल हिंसा परित्यागः प्रथमं व्रत मुत्तमम् ॥२२॥

भावार्थ—हे मुनि ! वैसे तो सभी जीव रक्षा के योग्य हैं परन्तु गृहस्थ को स्थूल जीवों की विशेष रक्षा करनी चाहिये । यह 'स्थूल हिंसा परित्याग' नामक प्रथम उत्तम व्रत है ॥२२॥

बन्धोवधस्तथा छेदश्चातिभारो महामने !
भक्तपानान्तरायं च माद्ये पञ्चातिचारकाः ॥२३॥

भावार्थ—हे महामना ! बन्ध वध, छेदन, अतिभार भक्त पानान्तराय ये प्रथम व्रत के पाँच अतिचार हैं ॥२३॥

वन्धो वन्धो वधो घातः छेदोऽङ्गस्य विभेदनम् ।

बहुभारोऽतिभारत्वं भोज्यविघ्नश्च पञ्चमे ॥३४॥

भावार्थ—हे गौतम । जीवों को दुष्टता से वान्धना वन्ध कहलाता है, घात करना वध कहलाता है, अङ्ग का छेदन करना छेद कहलाता है, वहुत भार लादना अतिभार कहलाता है और भोजन पानी में विघ्न करना भक्तपान अन्तराय कहलाता है ॥३४॥

पूर्णसत्यं सदा सेव्यं तत्राप्येतद्विशेषतः ।

स्थूलासत्य परित्यागो द्वितीय मित्युणुव्रतम् ॥३५॥

भावार्थ—हे मुनि । पूर्ण सत्य का सदा सेवन करना चाहिये अशक्तदशा में स्थूल असत्य परित्याग व्रत का तो अवश्य ही पालन करना चाहिये ॥३५॥

दोषारोपोरहस्योक्तिःस्वदारा मन्त्र भेदनम् ।

मृषाशिक्षा मृषालेखो द्वितीयस्यातिचारकाः ॥३६॥

भावार्थ—हे मुनि । दोषारोप, रहस्योक्ति स्वदार मन्त्र भेद, मृषाशिक्षा, मृषालेख ये दूसरे अणुव्रत के पाञ्च-अतिचार हैं ॥३६॥

दोषारोपः कलङ्कं स्याद्रहस्योक्तिरहश्च्युते ।

स्वपत्न्याःमन्त्रणा भेदे स्वदारा मन्त्रभेदनम् ॥३७॥

भावार्थ—हे गौतम । दूसरे पर झूठा कलङ्क लगाना दोषारोप दूसरे का रहस्य खोलना रहस्योक्ति, अपनी स्त्री की गुप्त वात प्रकट करना स्वदार-मन्त्र भेद कहलाता है ॥३७॥

मिथ्योपदेशनेसौम्य ! मृषा शिक्षेति युज्यत ।
कूट लेखक्रियायांतु मृषालेखार्थसङ्गतिः ॥३८॥

भावार्थ—हे सौम्य ! झूठा उपदेश देने को मृषाशिक्षा और कूटलेखन क्रिया को मृषा लेख कहते हैं ।।३८।।

स्तेयं सर्वविधं हेयं तत्राप्येवविशेषतः ।
स्थूलादत्त परित्यागस्तृतीय मित्यणुव्रतम् ॥३९॥

भावार्थ—हे मुनि ! सब प्रकार की चोरी सर्वथा त्याज्य है उस पर भी स्थूल अदत्त परित्याग नामक तीसरे अणुव्रत का विशेषतः पालन करना चाहिये ।।३९।।

स्तेनाहृतम् तद्योगो राज्यद्वेषो मृषातुला ।
पञ्चमो वस्तु सम्मिश्रस्तृतीयस्यातिचारकाः ॥४०॥

भावार्थ—हे गौतम ! स्तेनाहृत स्तेन प्रयोग राज्यद्वेष मृषातुला वस्तुमिश्र तीसरे अणुव्रत के ये पाँच अतिचार हैं ।।४०।।

प्रथमश्चोरितादाने तद्योगस्स्तेनयोजने ।
तृतीयो राज्य विद्रोहे मिथ्या तौले मृषातुला ॥४१॥

भावार्थ—हे गौतम ! चोरित वस्तु के आदान को स्तेनाहृत चोर को सहायता देने को स्तेनयोग राज्य विद्रोह करने को राज्य द्वेष और झूठी तौल को मृषातुला कहते हैं ।।४१।।

अर्घ्यानर्घ्यपदार्थानां वस्तुमिश्रस्तुमेलने ।
तृतीयस्य व्रतस्यास्य गौतमेत्यर्थ योजना ॥४२॥

भावार्थ—हे गौतम । अल्प मूल्य और बहुमूल्य वस्तुओं के मेल को वस्तु मिश्र कहते हैं यह तीसरे अणुव्रत की अर्थ योजना है ॥४२॥

ब्रह्मचर्यं सदा सेव्यं तत्राप्येतद्विशेषतः ।
सौम्य स्वदार सन्तोषश्चतुर्थं मित्यणुव्रतम् ॥४३॥

भावार्थ—हे सौम्य । ब्रह्मचर्य व्रत का सदा पालन करना चाहिये । विशेष कर स्वदार सन्तोष नामक चौथे अणुव्रत का पालन करना चाहिये ॥४३॥

ऐत्वरिकागमो विद्वन्न गृहीतागमस्तथा ।
कामक्रीडा परोद्वाहो भोगातीहाऽस्य पञ्चकः ॥४४॥

भावार्थ—हे विद्वन् । ऐत्वरिकागम, अगृहीता गमन, कामक्रीड़ा, परोद्वाह, भोगातीहा ये पाच चौथे अणुव्रत के अतिचार हैं ॥४४॥

ऐत्वरिकागमस्यार्थो वाग्दत्तादि समागमः ।
अगृहीतागमस्यायं परिणीतेतरा रतिः ॥४५॥

भावार्थ—हे मुनि । वाग्दत्ता आदि के साथ समोग को ऐत्वरिकागम अपरिणीता के साथ रति को अगृहीतागम कहते हैं ॥४५॥

कामक्रीडेऽस्त्यनङ्गीया परोद्वाहोऽप्ययुक्तकः ।

अत्यन्तभोग लिप्सा या भोगातीहेति गौतम ॥४६॥

भावार्थ—हे गौतम ! निन्द्य अङ्गों की कुचेष्टा को काम-क्रीड़ा, अनुचित विवाह-सम्बन्ध को परोद्वाह और अत्यन्त भोग लिप्सा को भोगातीहा कहते हैं ॥४६॥

परिग्रह' समस्त्यान्यस्तथाप्यतद्विशेषतः ।

वस्तु मर्यादनं भद्र ! पञ्चममित्यणुव्रतम् ॥४७॥

भावार्थ—हे भद्र ! परिग्रह सर्वथा त्याज्य है पर गृहस्थ को विशेष कर के वस्तु मर्यादा नामक पांचवें अणुव्रत का अवश्य पालन करना चाहिये ॥४७॥

क्षैत्रिकं श्वेतहैरिण्यं धान्यं च दास्य दासिकं ।

कुप्यघातश्च मित्यते पञ्चमस्यातिचारकाः ॥४८॥

भावार्थ—हे मुनि ! क्षैत्रिक श्वेतहैरिण्य धान्य-दास्य दासिक और कुप्य घातश्च ये पांच पांचवें अणुव्रत के अतिचार हैं ॥४८॥

एतत्पञ्चातिचाराणां मर्यादोल्लङ्घनं मुने ।

पञ्चमाणुव्रतस्यार्थं पूर्वाचार्यैर्हि विनिश्चितः ॥४६॥

भावार्थ—हे मुनि ! इस पञ्चम व्रत के पांच अतिचारों की मर्यादा का उल्लङ्घन करना ही इन पांच अतिचारों का अर्थ है ॥४६॥

गतिर्मर्यादयायुक्ता मर्यादोद्गमनं मुने ।
चतुःशिक्षाव्रतेष्वेतत् प्रथमं दिग्व्रतं शुभम् ॥५०॥

भावार्थ—हे मुनि । सब दिशाओं में मर्यादा सहित गमन करना मर्यादोदगमन नामक चार शिक्षाव्रतों मे प्रथम दिग्व्रत है ॥५०॥

उर्ध्वाधस्तिर्यगित्यासां प्रमाणस्य व्यतिक्रमः ।
क्षेत्रवृद्धिश्च वैस्मृत्यमेते पञ्चातिचारकाः ॥५१॥

भावार्थ—हे मुनि । ऊंची, नीची तिरछी तीनों दिशाओं के प्रमाण का व्यतिक्रम, नियमित क्षेत्र से अधिक क्षेत्र बढ़ाना और दिशानियम की विस्मृति ये छठे दिग्व्रत के पाञ्च अतिचार हैं ॥५१॥

समर्यादमव स्थानां भोगोपभोग वस्तुषु ।
एतद् भोगोपभोगाख्यं द्वितीयं शिक्षण व्रतम् ॥५२॥

भावार्थ—हे मुनि । भोगोपभोग वस्तुओं में मर्यादा पूर्वक रहना, दूसरा भोगोपभोग नामक शिक्षाव्रत है ॥५२॥

सचित्तं तत्प्रबद्धं च, त्वपक्वं दुर्विपाचितम् ।
तुच्छभोज्यं च पञ्चैते व्रतस्यास्यातिचारकाः ॥५३॥

भावार्थ—हे मुनि । प्रमाण रहित सचित्त वस्तु का सेवन 'सचित्त', सचित्त अचित्त मिली वस्तु का सेवन 'तत्प्रतिवद्ध' अध पकी वस्तु का सेवन 'अपक्व', अच्छी तरह न पकी हुई वस्तु का सेवन 'दुर्विपाचित' और खाने में थोडी आवे और फेंकी अधिक जावे, वह तुच्छ भोज्य कहलाता है ये दूसरे शिक्षा व्रत के पाञ्च अतिचार हैं ॥५३॥

प्रयोजनेन यो दण्ड: सोर्थ दण्ड: समुच्यते ।
अनर्थदण्ड-संत्याग: व्रतं सौम्याष्टमं शुभम् ॥४४॥

भावार्थ—हे मुनि ! प्रयोजन से जो दंड दिया जाता है उसे अर्थ दण्ड कहते हैं। अत: अनर्थ दण्ड त्याग रूप यह आठवां व्रत है ॥४४॥

कन्दर्पभाव कौत्कुच्यं मौखर्यं व्यर्थ संग्रह: ।
असमीक्ष्याधिकरण व्रतस्यास्याति चारका: ॥४५॥

भावार्थ—हे मुनि ! कामोत्पादक कथा-(कन्दर्प) कौतुहल जनक वाक्य-(कौत्कुच्य) असभ्य वचन मौखर्य भोगोपभोग की वस्तुओं का व्यर्थ संग्रह और बिना विचारे काम करना असमीक्ष्याधिकार कहलाता है। ये आठवें अनर्थ दंड व्रत के पांच अतिचार हैं ॥४५॥

सर्वजीवेषु साम्यत्वं रागद्वेषादि वर्जितम् ।
निर्वाणानन्द सन्दोहं व्रतं सामायिकं मुने ! ॥४६॥

भावार्थ—हे गौतम ! सब जीवों पर रागद्वेष रहित समभाव रखना ही निर्वाण के आनन्द को देने वाला सामायिक व्रत नाम का चौथा शिक्षाव्रत है ॥४६॥

यथाविधि व्रतं कार्यं शुद्ध स्थाने रह: स्थितम् ।
पूतभावै:समायुक्त: सर्वकल्याण कारणम् ॥४७॥

भावार्थ—हे गौतम ! पवित्र भावों से शुद्ध स्थान में बैठकर यथाविधि सामायिक व्रत का पालन करना चाहिये । जो सब का कल्याण करने वाला है ॥४७॥

मनोवाक्काययोगानां दुष्प्रणिधारणं मुने ।
परीभावोऽनवस्थानं वृतस्यास्यातिचारकाः ॥५८॥

भावार्थ—हे मुनि । मन वचन काया का दुष्प्रणिधान, सामायिक पूर्ण होने से पहले पारण तथा सामायिक की विस्मृति ये पाञ्च/अतिचार चौथे शिक्षाव्रत रूप सामायिक व्रत के हैं ॥५८॥

दिग्वृतस्यावधौ भद्र, संक्षेपेणाभिवर्त्तनम् ।
शिक्षादिक्षाप्रदञ्चैतद्देशावकाशिक व्रतम् ॥५९॥

भावार्थ—हे भद्र । दिग्व्रत की सीमा में अति सक्षेप से चलना, परम शिक्षाप्रद, देशावकाशिक नामक पहला गुण व्रत है ॥५९॥

शब्दरूपानुपातौ च प्रेष्ययोगानयौ तथा ।
पुद्गलक्षेपणं चैते वृतस्यास्यातिचारकाः ॥६०॥

भावार्थ—हे मुनि । वचन से कहकर परिमाणित देश से बाहर कार्य कराना शब्दानुपात, क्षेत्र से बाहर अभिप्राय समझाने के लिये अङ्ग सञ्चालन रूपानुपात, मर्यादित सीमा से बाहर किसी को भेजना प्रेष्ययोग, मर्यादित सीमा से बाहर की वस्तु मगाना आनय, ककर आदि फेंककर कार्य कराना पुद्गलक्षेपण होता है । ये दशवें देशावाकाशिक व्रत के पाञ्च अतिचार हैं ॥६०॥

सर्वाहार परित्यागैरात्मनः परिपोषणम् ।
सुवृतं सदनुष्ठानं तत्प्रतिपूर्णपोषधम् ॥६१॥

भावार्थ—हे मुनि । सब आहारों का परित्याग करके आत्मा का पोषण करने वाला सुन्दर अनुष्ठान प्रतिपूर्ण पौषध व्रत कहलाता है ॥६१॥

दुर्दृष्टाऽप्रेक्षितै र्भावैः दुर्मार्जिताऽप्रमार्जितैः ।
शय्यादि वस्तुमुद्ग्राहो न वृतस्य सुपालनम् ॥६२॥

भावार्थ—हे मत्र। अप्रेक्षित दुष्प्रेक्षित भावों से अप्रमार्जित दुष्प्रमार्जित भावों से शय्यादि वस्तु तथा स्थान का ग्रहण करना और पौषध व्रत का अच्छे प्रकार से पालन न करना ॥६२॥

दुर्दृष्टा प्रेक्षितैर्भावै दुर्मार्जिताऽप्रमार्जितैः ।
उच्चारादि परिभावो वृतस्यास्याति चारकाः ॥६३॥

भावार्थ—हे मुनि। अप्रेक्षित और दुष्प्रेक्षित भावों से तथा अप्रमार्जित दुष्प्रमार्जित भावों से उच्चारादि का परित्याग करना ये ग्यारहवें व्रत के पांच अतिचार हैं ॥ (युग्म) ॥६३॥

अतिथावन्नपानादेः सम्यक्त्वेन समर्पणम् ।
निर्मलं मङ्गलामूलमतिथि व्रतमित्यदः ॥६४॥

भावार्थ—हे मुनि। सम्यक् प्रकार से अतिथियों को अन्न आदि का दान करना निर्मल मङ्गलों का मूल अतिथिव्रत कहलाता है ॥६४॥

सचित्ताच्छादनक्षेपौ मात्सर्यं कालसंक्रमः ।
परस्यव्यपदेशश्च ह्यस्य पञ्चातिचारकाः ॥६५॥

भावार्थ — हे मुनि। देने योग्य आहार को सचित्त वस्तु से ढकना सचित्त वस्तु के ऊपर रखना मात्सर्य भाव से दान देना आहार दान के काल को उल्लंघन करना और दूसरे से दान दिलवाना ये बारहवें व्रत के पांच अतिचार हैं ॥६५॥

अतिक्रमो व्यतिक्रामः चातिचारो ह्यनाचरः ।
व्रतानि सर्वरूपाणि दोषायन्ते चतुर्विधैः ॥६६॥

भावार्थ—हे मुनि । अतिक्रम, व्यतिक्रम, अतिचार और अनाचार इन चार प्रकारों से सब प्रकार के व्रत दूषित होते हैं ॥६६॥

प्राप्नुवन्ति महा कष्टं व्रतभङ्गाभिधायिनः ।
अतोभद्राभिलापिभ्यः पालनीयं व्रतं शुभम् ॥६७॥

भावार्थ—हे भद्र । व्रतों को भङ्ग करने वाले मनुष्य महान् कष्ट पाते हैं । अत कल्याण के अभिलाषियों को सदा शुभ व्रतों का पालन करना चाहिये ॥६७॥

स्वर्गाय मर्त्य लोकाय मृत्यवे जीवनायच ।
भोगाय स्वात्मनःसिद्धि रुणाद्धिव्रत पालनम् ॥६८॥

भावार्थ—हे भद्र । स्वर्ग प्राप्ति की इच्छा से, नरलोक की इच्छा से मृत्यु की इच्छा से जीवन की इच्छा तथा भोग प्राप्ति की इच्छा से किया गया व्रत पालन आत्मा की सिद्धि को रोकता है ॥६८॥

यथा शक्यं ग्रहीतंयत् व्रतं पूर्ण विधानतः ।
पूर्णतः पालनीयंतत् कायेन मनसा गिरा ॥६९॥

भावार्थ—हे भद्र । अपनी शक्ति के अनुसार नियम से धारण किये गए व्रत का मन वचन काया से पूर्णत पालन करना चाहिए ॥६९॥

पाप कारस्तु संसारे प्राप्यते पापिनः पदम् ।

व्रतस्योच्छेदको यो ना महापापी स उच्यते ॥७ ॥

भावार्थ—हे मुनि ! पाप करने वाला मनुष्य तो संसार में पापी कहलाता है, परन्तु जो ग्रहण किए व्रत का खण्डन करता है वह मनुष्य महापापी कहलाता है ॥७ ॥

॥ इतिश्री श्रीमत कविरत्न-उपाध्याय अमृत मुनि विरचितायाँ श्री मद्गौतमगीतायां "गृहस्थ धर्म योगो नाम" द्वितीयोऽध्याय ।

॥ तृतीयोऽध्यायः ॥

भगवानुवाच—

साध्नोति परं साध्यं तपश्चर्यादि साधनैः ।
साधकस्तत्त्व मर्मज्ञः "साधु" रित्यभिधीयते ॥ १ ॥

भावार्थ—हे मुनि ! जो तपश्चर्यादि साधनों से परम साध्य की साधना करता है वही तत्व मर्मज्ञ साधक—साधु कहलाता है ॥ १ ॥

साधुधर्मो द्विधा सौम्य स्थविर-जिनकल्पित ।
स्थविर कल्पिसाधूनां विमर्श प्राभिधीयते ॥ २ ॥

भावार्थ—हे सौम्य ! साधु धर्म दो प्रकार का है । स्थविर और जिन कल्पी । सर्व प्रथम स्थविरकल्पी मुनियों का विधान करते हैं ॥ २ ॥

अहिंसा सत्य मस्तेयं ब्रह्मचर्या परिग्रहौ ।
पञ्च महाव्रतानीति पालयन्त्यनिशं मुने ॥ ३ ॥

भावार्थ—हे मुनि ! स्थविर कल्पि-साधु अहिंसा सत्य अचौर्य ब्रह्मचर्य और अपरिग्रह इन पांच महा व्रतों का पूर्ण रूप से पालन करते हैं ॥ ३ ॥

प्रहीतं वाङ्मनःकायैः कृतेन कारितेन च ।
समर्थनेन तत्त्वज्ञ यद् व्रतं तन्महा व्रतम् ॥ ४ ॥

भावार्थ—हे तत्त्वज्ञ ! कृत कारित अनुमोदन पूर्वक मन वचन काया से जो व्रत ग्रहण किया जाता है उसे महा व्रत कहते हैं ॥ ४ ॥

ईर्याभाषैषणा दान-निक्षेपोत्सर्ग नामिकान् ।
मोपायन्ति च पञ्चैतान् समितीः रपि निस्पृहाः ॥ ५ ॥

भावार्थ—हे मुनि ! वे साधु ईर्या समिति भाषा समिति एषणा समिति आदान भाण्ड निक्षेपणा समिति और उत्सर्ग समिति इन पांचों समितियों का पूर्णरूप से संरक्षण करते हैं ॥५॥

क्षुतृप्शीतोष्णदुर्दंशमशकाचैल्यकाऽरति, ।
नारीचर्या निषद्याख्य-शय्याऽक्रोशवधानिच, ॥
याचनालाभ संरोग-तृणस्पर्शमलान्यपि, ।
सुसत्कार पुरस्कार प्रज्ञाऽज्ञानानि दर्शनम्, ॥
एतेषां परिसोढारो वोढारो गुण-सहतेः ।
शास्त्रावगाहनासक्ताः साधवो मुनि सत्तम !
(त्रिग्मम्) ॥ ६ ॥

भावार्थ—हे मुनि सत्तम ! क्षुधा, २ तृषा ३ शीत ४ उष्ण ५ दशमशक ६ अचेल ७ अरति ८ स्त्री ९ चर्या १० निषद्या ११ शय्या १२ आक्रोश १३ वध १४ याचना १५ अलाभ १६ रोग १७ तृण स्पर्श १८ मल १९ सत्कार पुरस्कार २० प्रज्ञा २१ अज्ञान २२ दर्शन, इन २२ परिषहों के सहन करने वाले, और महान् गुणों के धारी परम शास्त्राभ्यासी मुनि राज होते हैं ॥ ६ ॥

गौतम उवाच—

श्रोतुमिच्छामि साधूना ममीषां नियमान प्रभो ।
मुनिधर्मस्य येनात्र वोधो भवतु भूतले ॥ ७ ॥

भावार्थ—हे प्रभो ! मैं इन साधुओं के नियमों को सुनना चाहता हूँ । जिससे ससार मे, मुनि धर्म का ज्ञान हो ॥ ७ ॥

भगवानुवाच—

येनोत्तीर्णस्य मायया अनेक देहधारिणः ।

मुनीनां तस्य धर्मस्य व्याख्यानं वच्मि तच्छृणु ॥ ८ ॥

भावार्थ—हे गौतम ! जिसके द्वारा अनेक देह धारी संसार से पार हुए हैं उस मुनि धर्म का व्याख्यान तुझे सुनाता हूं ॥ ८ ॥

आत्मनि सदा धर्मस्य समावेशाय गौतम ।

लुञ्चनं कचा कुञ्चाना मात्मीयते हि साधुभि ॥ ९ ॥

भावार्थ—हे गौतम ! अपने जीवन में सहनशीलता प्राप्त करने लिये के साधुजन अपने सिर के बालों का लुंचन करते हैं ॥९॥

अश्वशकट यानानां सर्वथा परिवर्जनम् ।

अटनमोपदेशाय स्वीकुर्वन्त्यत्र सर्वदा ॥१ ॥

भावार्थ—हे मुनि ! अश्व गाड़ी आदि सब सवारियों का त्याग करके मुनिजन इस संसार में उपदेश देने के लिये पैदल ही भ्रमण करते हैं ॥१०॥

भिक्षावृत्तिम निर्दोषा धर्ममर्मप्रसाधिका ।

आमर्षिकटुवाक्यानां शान्तिशील प्रतीक्षम् ॥११॥

भावार्थ—हे मुनि ! धर्म के मर्म की साधना कराने वाली निर्दोष भिक्षा वृत्ति करते हुए मुनिराज कठोर पुरुषों के कटु वचनों को शान्ति-पूर्वक सहन करते हैं ॥११॥

राज्ञि रङ्के दरिद्रे वा धनाढ्ये पूरुषे तथा ।
पंडिते बालिशे नापिवर्त्तन्ते तेऽतिसाम्यतः ॥१२॥

भावार्थ—हे मुनि । वे मुनिराज, राजा, रङ्क, धनी, निर्धन पण्डित और मूर्ख सब को आत्मा की दृष्टि से समता पूर्वक देखते हैं ॥१२॥

निर्ग्रन्थाः भिक्षवश्चैव माहणाः श्रमणर्षयः ।
मुनयः षड्विधाः संज्ञाः साधुनां मुख्यतो मुने ॥१३॥

भावार्थ—हे महामते । निर्ग्रन्थ, भिक्षु, माहण, श्रमण, ऋषि और मुनि ये साधुओं के छ संज्ञा भेद हैं ॥१३॥

तत्त्वज्ञाःनिष्प्रमादास्तु ज्ञानज्योतिःसुदीपिताः ।
मोहाद्यग्रथिताः सन्तो निर्ग्रन्था मुनि गौतम ॥१४॥

भावार्थ—हे मुनि गौतम । तत्त्वज्ञ, निष्प्रमादी ज्ञान ज्योति से दीप्त मोह आदि की ग्रन्थियों से रहित साधु मुनि निर्ग्रन्थ कहलाते हैं ॥१४॥

भिक्षवो गतगर्वाश्च विनीताःविजितेन्द्रियाः ।
योगिनोऽध्यात्मविद्वान्सः पुद्गलज्ञानराजिताः ॥१५॥

भावार्थ—हे मुनि । निरभिमानी, विनीत, जितेन्द्रिय, योगी अध्यात्मिक विद्वान् और पुद्गल ज्ञान के ज्ञाता साधु मुनि भिक्षुक कहलाते हैं ॥१५॥

मनोवाक्कर्मयोगेषु पूर्वं कस्य समाश्रिता ।
मिथ्याशल्यविहीनास्ते माहशा साधवो मुन ॥१६॥

भावार्थ—हे मुनि ! जिनका मन वचन और काया एक रूप में आ गए हैं वे मिथ्याशल्य से विहीन साधु मुनिजन माहण कहलाते हैं ॥१६॥

अममत्वा सन्ति धीरेहा निष्कषायाऽविहारिणः ।
मैत्री-द्वेषाद्युदासीना विरागमेव निस्पृहा ॥१७॥

भावार्थ—हे मुनि ! इच्छा रहित कषाय रहित विचरण शील मैत्री और द्वेष में उदासीन साधु मुनिजन अममत्व कहलाते हैं ॥१७॥

सम दुःखसुखाधीरा ऋषयः पूर्ण संयताः ।
ज्ञानध्यान प्रवीणाश्च पर निन्दनविच्युता ॥१८॥

भावार्थ—हे मुनि दुःख सुख में सम, धीर, पूर्ण संयमी, ज्ञान ध्यान प्रवीण परनिन्दा से रहित साधुजन ऋषि कहलाते हैं ॥१८॥

मन्तारः सत्यतत्त्वानां निर्ममत्वास्तपस्विनः ।
मनोजेतृ महावीरा मुनयस्ते ध्रुवि गौतम ॥१९॥

भावार्थ—हे गौतम ! सत्य तत्त्वों के श्रद्धा निर्ममत्व तपस्वी मन को जीतने वाले महावीर धीर साधुजन मुनि कहलाते हैं ॥१९॥

मुखवस्त्रिकया युक्ता रजोहरण संयुताः ।
मितोपकरणाः भद्र ! श्वेतवस्त्रोपधारकाः ॥२०॥

भावार्थ—हे भद्र । साधु जन मुखवस्त्रिका और रजोहरण से युक्त तथा मर्यादित धर्मोपकरण धारी और श्वेत वस्त्रों से सुशोभित होते हैं ॥२०॥

दोषाऽदन्ति कदाचिन्नो प्राणैः कण्ठगतै रपि ।
सर्वरात्रे सुशान्तिस्थाः यथा वृक्षेपतत्रिणः ॥२१॥

भावार्थ—हे मुनि । साधु महात्मा मरणान्तिक कष्ट आने पर भी रात्रि में कुछ भी नहीं खाते । सारी रात्रि शान्त भाव से उसी प्रकार व्यतीत करते हैं जिस प्रकार कि पक्षीगण वृक्षों पर रात्रि को शान्त रहते हैं ॥२१॥

पादुकोपानहौ छत्रं ताम्बूलं केशबन्धनम् ।
उद्वर्त्तनाञ्जने स्नानं तेषां नार्हाणि गौतम ॥२२॥

भावार्थ—हे गौतम ! खड़ाऊ, जूता, छत्र, पान, केशबन्धन शरीर शोभा की सामग्री, अञ्जन और स्नान, साधुओं के लिये, ये कर्म वर्जित हैं ॥२२॥

धारयन्ति मुनि श्रेष्ठाः वस्तु मात्र मधातुकम् ।
पात्राण्यपिच काष्ठस्य मृन्मयानि सदा मुने ॥२३॥

भावार्थ—हे मुनि । श्रेष्ठ मुनिराज सम्पूर्ण धातुओं से रहित वस्तुओं को धारण करते हैं । अपने पास पात्र भी काठ अथवा मिट्टी के रखते हैं ॥२३॥

न्नते प्रयोजनं साधु न यायादपि कुत्रचित् ।
निम्नदृश्या गतिप्राप्तौ प्रक्ष्य युग्ममितां धराम् ॥२४॥

भावार्थ—हे मुनि ! बिना प्रयोजन साधु को कहीं नहीं जाना चाहिये । यदि कारण-वश कहीं जाना भी पड़े तो शरीर प्रमाण धरती को आगे देखता हुआ, नीची दृष्टि से चल ॥२४॥

अन्यथा प्रचलतस्य स्खलनं जीवहिंसनम् ।
शकुन्तपोऽथवा पादे दन्दशूकादिदंशनम् ॥२५॥

भावार्थ—हे मुनि ! बिना देखे चलने से ठोकर खाकर गिरना जीव की हिंसा, मल से पैरका भराब होना और हिंसक जन्तुओं के काटने का भय होता है ॥२५॥

चतुर्विधासु भाषासु सत्यगी र्व्यवहारगी ।
प्रयोज्या मुनिनाऽसत्या मिश्राद्देया च सर्वदा ॥२६॥

भावार्थ—हे मुनि ! चार प्रकार की भाषाओं में से साधुओं का सत्य और व्यवहार भाषा का प्रयोग करना चाहिये और असत्य तथा मिश्रभाषा नहीं बोलनी चाहिये ॥२६॥

भाष्यं हास्यवचो नापि, नाभ्याख्यानवचो मुने ।
काले हितं मितं सत्यं, भाषेथ वल्गु वल्गु सम् ॥२७॥

भावार्थ—हे मुनि ! साधु मुनियों का किसी की हंसी नहीं उड़ानी चाहिये और नहीं किसी पर झूठा कलंक लगाना चाहिये व स्व समयानुसार, हितकारी थोड़ा और अति प्रिय सत्य वचन बोलना चाहिये ॥२७॥

धियाऽऽलोच्यवचःस्वान्ते वदेत्सम्यक् समाहितः।
मनोविज्ञानहीनंयद्ददाति पर मापदः ॥२८॥

भावार्थ—हे मुनि। मन और बुद्धि से सोचकर सावधानी से वचन बोलना चाहिये। क्योंकि, मनोविज्ञानहीन वचन परम आपत्तियों को जन्म देते हैं ॥२८॥

यमी सयमसिद्ध्यर्थं बिभ्रीताशून कलेवरे।
भोज्यं विनान तद्रक्षा, भिक्षातल्लब्धि साधनम् ॥२९॥

भावार्थ—हे मुनि। साधु पुरुष, सयम की सिद्धि के लिये शरीर मे प्राण धारण करे। भोजन के बिना उन प्राणों की रक्षा नहीं होती अत भिक्षावृत्ति ही भोजन का साधन है ॥२९॥

सुस्वादु नीरसंवाऽपि प्रासुकं यद्वि जेमनम्।
तस्मिन्नेव सुसन्तुष्टो यःस श्रेष्ठतमो मुनिः ॥३०॥

भावार्थ—हे मुनि। सुस्वादु, अथवा नीरस कैसा भी प्रासुक भोजन हो, उसी में सन्तुष्ट रहने वाला मुनि सर्वश्रेष्ठ कहलाता है ॥३०॥

अशेषंच हरित्कायं नस्पर्शन्ति सुसाधवः।
भक्षणंतु कथंतेषां कर्त्तुमर्हाः महामते ॥३१॥

भावार्थ—हे महामति। साधु जन हरित्काय का स्पर्श भी नहीं करते, फिर उनका भक्षण तो कर ही कैसे सकते हैं? ॥३१॥

क्षुधाशान्त्यै यतिसेवायै धर्माय संयमाय च ।
ईर्यायै जीवरक्षायै भिक्षामाचरतान्मुनिः ॥२२॥

भावार्थ—हे मुनि ! क्षुधा की शान्ति के लिये साधु सेवा के लिये, धर्म पालन के लिये संयम निर्वाह के लिये ईर्या समिति के लिये और जीव रक्षा के लिये इन छः कारणों से साधु भिक्षा ग्रहण करे ॥२२॥

सरःकूपापगादीनां न पिबन्ति सचित्तकाः ।
प्रासुकञ्चापि सद्वारि भिक्षया ग्रान्ति साधवः ॥२३॥

भावार्थ—हे मुनि ! साधुजन तालाब कूप, नदी आदि का सजीव जल नहीं पीते हैं और प्रासुक जल भी भिक्षा द्वारा ग्रहण करते हैं ॥२३॥

आनीतं भोजनं भद्र ! गुरुं निवेद्य भक्तितः ।
समस्तैः साधुभिः सार्धं भुञ्जीत समभावतः ॥२४॥

भावार्थ—हे मुनि ! लाए हुए आहार को भक्तिपूर्वक गुरु के सम्मुख निवेदित करके, सब साधुओं के साथ समभाव पूर्वक भोजन करे ॥२४॥

स्वकीयाय कृतं भोज्यं, यद्गृह्णाति यो मुनिः ।
ममाज्ञा लोपको भद्र ! धर्मात्पातयति स्वकम् ॥२५॥

भावार्थ—हे भद्र ! अपने लिए बनाए गए आहार पानी को जो मुनि ग्रहण करता है । वह मेरी आज्ञा का लोपक है, और अपने आप को धर्म से पतित करता है ॥२५॥

भिक्षुर्मधुकरी वृत्त्या भोज्यं प्राप्य मितं मुने ।
काले गव्यूति सीमायां युञ्जीतैतच्च भोजनम् ॥३६॥

भावार्थ—हे मुनि । मधुकरी वृत्ति से भोजन को प्राप्त करके, कालमर्यादा में तथा दो कोस की मर्यादा में, उसका प्रयोग करे ॥३६॥

भिक्षायाः यत्र यःकालो ग्रामेवा पत्तने मुने ।
तत्रतत्रोचिते काले भिक्षायै संव्रजेन्मुनिः ॥३७॥

भावार्थ—हे मुनि । जिस स्थान पर भिक्षा का जो काल हो उस स्थान पर उसी काल, मुनि भिक्षा को जाये ॥३७॥

वस्त्रैषणाऽपि कर्त्तव्या रीत्या वत्स ! सुशोभना ।
नसंचिन्वीत वासांसि, कालमानाधिकानि च ॥३८॥

भावार्थ—हे वत्स । वस्त्र की याचना भी साधु को नियम-पूर्वक करनी चाहिये । काल और परिमाण से अधिक वस्त्रों का सग्रह साधु कदापि न करे ॥३८॥

स्थानाधिपाज्ञया स्थेयं, नारी-पश्वादि वर्जिते ।
सुस्थानेऽनाज्ञया भद्र, नाङ्गी कुर्यात्क्वचिद्गृहम् ॥३९॥

भावार्थ— हे भद्र ! साधु को, नियमानुसार, स्त्री आदि से रहित स्थान में, मालिक की आज्ञा से रहना चाहिये । बिना आज्ञा किसी भी स्थान को स्वीकार नहीं करना चाहिये ॥३९॥

अकारणं गतिः, स्त्रीणां साध्वीनां साधु-मन्दिरे ।
सतां तूर्णां च, साध्वीनां माधासे नोचिततया ॥४०॥

भावार्थ—हे मुनि ! बिना कारण साधुओं के पास स्त्रियों का जाना और साध्वियों के पास पुरुषों तथा साधुओं का जाना उचित नहीं है ॥४०॥

वर्षेऽधिकं चतुर्मासात्, स्थानं सतां न सङ्गतम् ।
शेषेतुकोऽन्यकालीनो मासाद्वास' परो नहि ॥४१॥

भावार्थ—हे मुनि ! एक वर्ष में चतुर्मास से अधिक, एक स्थान पर साधुओं का निवास नहीं करना चाहिये तथा अन्य आठ महीनों में भी, बिना कारण एक मास से अधिक नहीं ठहरना चाहिये ॥४१॥

अवरुद्धं जलं सौम्य निर्मलं कलुषायते ।
अतः साधुजनैः सम्यक् विहर्तव्यं सदा सुधि ॥४२॥

भावार्थ—हे सौम्य ! रुका हुआ पानी जिस प्रकार कलुषित हो जाता है, उसी प्रकार साधु के एक स्थान पर अधिक ठहरने से दोष लगता है । अतः साधुजनों को नियमानुसार विचरते ही रहना चाहिये ॥४२॥

चिरो गन्तु मनर्हः स्यात्, शास्त्राभ्यासो परं तथा ।
वृद्धः शेषां निजावस्था मेकस्थानेऽपियापयेत् ॥४३॥

भावार्थ—हे मुनि ! यदि कोई मुनि चलने में असमर्थ क्षीण शक्ति—वृद्ध हो तो वह अपनी शेष आयु को एक स्थान पर भी व्यतीत कर सकता है ॥४३॥

अम्बरादीनि वस्तूनि नोन्यसेद्यत्र कुत्रचित् ।
प्रमार्ज्य वीक्ष्य, निक्षेपो घटते यमिनां सदा ॥४४॥

भावार्थ—हे मुनि । वस्त्र आदि वस्तुओं को मुनि इधर उधर न डाले । बल्कि जगह साफ करके, देख करके प्रत्येक वस्तु को यथास्थान रखे ॥४४॥

प्रातः सायं समुद्युक्तः, प्रतिलिखेद्यथाविधिः ।
वस्त्रादीनि समस्तानि संयमी, मुनि पुंगव ! ॥४५॥

भावार्थ—हे मुनि पुंगव । प्रात और सायकाल संयमी मुनि अपने सम्पूर्ण वस्त्र आदि की प्रतिलेखना करे ॥४५॥

खट्वादिके च पर्यङ्के, न शयीत सुसंयमी ।
शयीत भूमिशय्यायां पट्टे काष्ठमयेऽथवा ॥४६॥

भावार्थ - हे मुनि । साधु, खाट पलग आदि पर शयन न करे, भूमि शय्या अथवा पट्टा आदि पर शयन करे ॥४६॥

निम्नोन्नते जनाकीर्णे सरंध्रे जनवर्त्मनि, ।
देवजन्तु समाविष्टे स्थाने न स्वमलं त्यजेत् ॥४७॥

भावार्थ—हे मुनि । साधु, नीची ऊंची, सछिद्र, जन-पूर्ण, देवस्थान, जन्तुस्थान और मार्ग में मलत्याग न करे ॥४७॥

कामव्यापारकर्माणि, त्यागं सच्चासनानि च ।

वशी कुर्वन् सदा साधुः संवेगं समनुभवन् ॥४८॥

भावार्थ—हे मुनि ! काम का बढ़ाने वाली भद्र—मंचकासनादि प्रयोगों को, वश में करता हुआ साधु सदा संवेग-पूर्वक रहे ॥४८॥

संयम्य चञ्चलचित्तं संयमोपयमादिभिः ।

सर्वदा धर्मकार्येषु, धारयेत् स्थिरमात्मनाम् ॥४९॥

भावार्थ—हे मुनि ! चञ्चल चित्त का संयम के नियम उपनियमों से वश में कर के साधु को सदा धर्म-कार्यों में स्थिर रहना चाहिये ॥४९॥

उत्थायान्त्ये निशायामे स्वाध्यायं विदधीत स' ।

आवश्यकं च सूर्यादौदयम् प्रतिलेखनम् ॥५०॥

भावार्थ—हे मुनि ! निशा के अन्तिम याम में उठकर, सर्व प्रथम स्वाध्याय करके सूर्योदय से पहले आवश्यक (प्रतिक्रमण) करे। फिर प्रति लेखन करे ॥५०॥

ततोऽध्यानादि निर्वर्त्य भिक्षार्थं संव्रजेन्मुनिः ।

शेषकालस्य सद्योगात्व्याख्याने धर्म कर्मसु ॥५१॥

भावार्थ—हे भद्र ! तत्पश्चात ध्यान आदि से निवृत्त होकर, मुनि भिक्षा को जावे। शेष समय को धर्म कर्म व्याख्यान आदि में व्यतीत करे ॥५१॥

सूर्यान्ते विधिना भद्र विधायावश्यकं मुने ।
स्वाध्यायादि कृतं कृत्वा शयिशीष्ट सदामुनिः ॥५२॥

भावार्थ—हे मुनि । सायकाल विधि-पूर्वक प्रतिक्रमण से निवृत्त होकर, स्वाध्याय आदि कृत्य करे तत्पश्चात् शयन करे ॥५२॥

यस्यां रात्रौ समे लोकाः शेरते मोह निद्रया ।
तस्यां निर्मोहिनः सन्तः कुर्वते धर्म-जागराम् ॥५३॥

भावार्थ—हे भद्र । जिस रात्रि में लोग मोह-निद्रा में सोते हैं श्रेष्ठ सयमी जन उस समय धर्म जागरण करते हैं ॥५३॥

मारणं मोहनं मन्त्रैस्तन्त्रादिभिर्वशीकृतिम् ।
उच्चाटनादि कर्माणि न कुर्यात्सुमुनिः कदा ॥५४॥

भावार्थ—हे मुनि । मन्त्रों द्वारा, मारण, मोहन, वशीकरण और उच्चाटनादि कर्म, साधु कभी न करे ॥५४॥

पुलाकाः वकुशाश्चैव निर्ग्रन्थास्तु कुशीलकाः ।
स्नातकाश्चतथा केचित्निर्ग्रंथाः पञ्चधामुने ॥५५॥

भावार्थ—हे मुनि । निर्ग्रन्थ पाञ्च प्रकार के होते हैं पुलाक वकुश, निर्ग्रन्थ, कुशील और स्नातक ॥५५॥

ईषद् गुणा पुलाकास्तु भूरिदूषण दूषिता ।
सम्यसेवनाभेदात्ते द्विधा सन्ति गौतम ॥४६॥

भावार्थ—हे गौतम ! जिन में गुण थोड़े और अवगुण अधिक होते हैं। उन्हें पुलाक निग्रन्थ कहते हैं। इनके, लब्धिपुलाक और असेवनापुलाक ये दो भेद हैं ॥४६॥

तेजोलेश्यामृतधाया संघाद्यर्यादि विनाशकाः ।
मूलोत्तरगुणोघानांमेवारश्चापरे मुने ॥ ४७ ॥

भावार्थ—हे मुनि ! चतुर्विध संघ के शत्रु आदि का नाश करने वाले लब्धिपुलाक होते हैं। तथा मूल गुण तथा उत्तर गुणों का नाश करने वाले असेवन पुलाक होते हैं ॥४७॥

मूलगुणैः सु सम्पन्नाः गुणावगुणधारका ।
औपकरणशारीरा बकुशास्तेद्विधामुने ॥ ४८ ॥

भावार्थ—हे मुनि ! मूल गुणों से युक्त गुण और अवगुण के धारक बकुशनिर्ग्रन्थ होते हैं। इनके औपकरण और शरीर ये दो भेद हैं ॥४८॥

मर्यादा मतिलंध्याया वस्त्रादीनि निबिभ्रति ।
कामयन्ते वपुर्भूषा मन्त्या कर्मरायामाः ॥४९॥

भावार्थ—हे भद्र ! मर्यादा को अतिक्रमण करके वस्त्रादि धारण करने वाले औपकरण बकुश होते हैं और शरीर की विभूषा आदि करने वाले शरीर बकुश होते हैं ॥४९॥

गुणागुणान् समान् भद्र संज्ञपन्ते कुशीलकाः ।
द्विधातेऽप्यवलोक्यन्ते कषायाः प्रतिसेवनाः ॥६०॥

भावार्थ—हे भद्र । जो समान, गुण, अवगुणों को धारण करते हैं । उन्हें कुशील निर्ग्रन्थ कहते हैं । इन के भी, कषाय कुशील और प्रति सेवना कुशील ये दो भेद हैं ॥६०॥

सकषायाः सुधर्मार्थं कषायास्ते प्रियम्वद ।
इन्द्रियार्थेषु संलग्ना इतरे प्रतिसेवनाः ॥६१॥

भावार्थ—हे प्रियम्वद । धर्मादिके लिये, कषाय धारण करने वाले कषाय कुशील और इन्द्रियों में सलग्न प्रति सेवना कुशील होते हैं ॥६१॥

बहुगुणाश्च निग्रन्थाः मूलोत्तर गुणंगताः ।
द्विर्भेदोभवत स्तेषां क्षीणाशान्त कषायिनौ ॥६२॥

भावार्थ—हे मुनि । मूलगुण और उत्तर गुणों को धारण करने वाले परम गुणवान् निर्ग्रन्थ होते हैं । इनके क्षीण कषाय, और शान्त कषाय ये दो भेद हैं ॥६२॥

नष्टसर्व कषायत्वं क्षीणानां लक्षणं मुने ।
उपशान्तिः कषायाणांलिङ्ग शान्तकषायिनाम् ॥६३॥

भावार्थ—हे मुनि । सर्व कषायों का नाश करने वाले 'क्षीण कषाय' और कषायों को उपशान्त करने वाले, 'शान्त कषाय' कहलाते हैं ॥६३॥

घातक कर्मणां नाशात् स्नातकाभिधा ।
अयोगिनः सयोगाश्च, द्विधा तेऽप्यत्र गौतम ॥६४॥

भावार्थ—हे गौतम ! घातक कर्मों के नाश करने वालों को स्नातक कहते हैं । इनके भी अयोगी स्नातक और सयोगी स्नातक ये दो भेद हैं ॥६४॥

योगान्मुक्ता अयोगाश्च वाङ्मनःकाय कर्मणाम् ।
योगावसम्बिनोभद्र ! योगिनः स्नातकाः परे ॥६५॥

भावार्थ—हे भद्र ! मन वचन काया के योग से मुक्त अयोगी स्नातक तथा मन, वचन काया के योग से युक्त सयोगी स्नातक होते हैं ॥६५॥

स्थविराणामिदं प्राज्ञ किञ्चिन्मात्रमिहदर्शितम् ।
जिज्ञासु त्वामतोवच्मि, विचारं जिनकल्पिनाम् ॥६६॥

भावार्थ—हे प्राज्ञ ! स्थविर मुनिराजों का यह किंचित वर्णन किया है । अब कुछ तुम से जिन कल्पियों के विषय में कहते हैं ॥६६॥

मार्धनवस्य पूर्वस्य बोद्धारो वा दशान्तरा ।
वज्रसंघयन आपि स्थविर कल्प संभवाः ॥६७॥

भावार्थ—हे मुनि ! जिन कल्पी मुनि वही बन सकता है जो वज्र संघयन का धनी हो तथा दश पूर्व से कम साढे नव पूर्व का ज्ञाता हो । जिन कल्पी मुनि स्थविर कल्प में से ही होते हैं ॥६७॥

पाणिपात्राः सदाचाराः कषायपरिवर्जिताः ।
अरण्यवासिनो नग्नाः साधवो जिनकल्पिनः ॥६८॥

भावार्थ—हे मुनि । पाणिपात्र, सदाचारी, कषायों से रहित, अरण्य वासी मुनि ही, जिन कल्पी होते हैं ॥६८॥

सन्ति तीर्थङ्करास्चापि कल्पातीताजिनाःमुने ।
सर्वतन्त्र स्वतन्त्रास्ते यथा ज्ञानविधायकः ॥६९॥

भावार्थ—हेमुनि । तीर्थंकर भगवान भी जिन कल्पी होते हैं । परन्तु कल्पातीत होने के कारण सर्वतन्त्र स्वतन्त्र और सर्व नियम उपनियम से परे तथा जैसा ज्ञान में झलकता है वैसा ही आचरण करते हैं ॥६९॥

संघयनादिविच्छेदात् पञ्चमे समये मुने ।
निषिद्धं जिनकल्पित्वं धत्ते यो मत्पराङ्मुखः ॥७०॥

भावार्थ—हे मुनि । संघयन आदि की कमी के कारण पंचम काल में जिनकल्प धारण करना निषिद्ध है । यदि पचम काल मे कोई जिन कल्प का धारण करता है, वह मेरी आज्ञा से पराङ्-मुख है ॥७०॥

भूयान्सः साधवोभूत्वा पुनर्गच्छन्त्यधः क्रियाम् ।
परत्रेहच तेनूनं दुःखं बिभ्रति गौतम ॥७१॥

भावार्थ—हे गौतम । बहुत से मनुष्य साधु बन कर पतित हो जाते हैं । वे इस लोक मे और परलोक मे दुख उठाते है ॥७१॥

साधुताङ्गीकृता पूर्वं साधनां साधयेत्सुधी ।
सदैव साध्यसिद्धिं तु गन्तुमर्हत्यसंशयं ॥ ७२ ॥

भावार्थ—हे मुनि ! साधु बनने से पूर्व साधना करनी चाहिये तभी साध्य की सिद्धि प्राप्त हो सकती है ।।७२।।

यस्य धर्मे दृढा श्रद्धा ज्ञानक्रियासमन्विता ।
स एव साधुतामार्गं कठिनं समधर्यजनः ॥ ७३ ॥

भावार्थ—हे मुनि ! जिस की धर्म में ज्ञान क्रिया से युक्त दृढ़ श्रद्धा है, वही पुरुष साधुता के कठिन मार्ग को धारण कर सकता है ।।७३।।

साधुधर्मस्य नौकायां नास्ति जात्यादि भेदिता ।
अतो निर्भयमारुह्य प्रत्येकस्तत्तुं महति ॥७४॥

भावार्थ—हे मुनि ! साधु धर्म पर जातिवाद का कोई प्रभाव नहीं है । अतः प्रत्येक नर नारी, चाहे वह किसी भी जाति का हो साधु धर्म की नौका में बैठकर तर सकता है ।।७४।।

इति श्रीमति श्रीमत्कवि रत्न उपाध्याय अमरमुनि विरचितायां श्रीमद्गौतम गीतायां साधुधर्म बोधो नाम तृतीयोऽध्यायः ।

॥ चतुर्थोऽध्यायः ॥

भगवानुवाच—

जीवोऽजीवस्तथा पुण्य—पापाश्रवौच सम्वरः।
निर्जरा बन्धमोक्षाश्च तत्त्वानि नव गौतम ॥ १ ॥

भावार्थ—हे गौतम! जीव, अजीव, पुण्य, पाप-आश्रव, सम्वर, निर्जरा, बन्ध और मोक्ष ये नौ तत्त्व हैं ॥ १ ॥

सुखदुःखानुभोक्ता यः पाप-पुण्य विधायकः ।
चैतन्यलक्षणं यस्य सजीवो हिमहामते ॥ २॥

भावार्थ—हे महामते ! सुख दुःख का भोक्ता पाप पुण्य का करने वाला चैतन्य जिसका लक्षण है, उस तत्व को जीव कहते हैं ॥ २ ॥

संसारिणो विमुक्ताश्च भव्याभव्यनिदर्शना ।
स मनस्काऽमन स्काश्च जीवा गीताः द्विधामुने ॥ ३ ॥

भावार्थ—हे मुने ! संसारी और विमुक्त, भव्य और अभव्य मन सहित और मन रहित इस प्रकार से जीव दो प्रकार के होते हैं ॥३॥

संसारिणो द्विधा तत्र त्रस स्थावरभेदतः ।
एकेन्द्रियसमाख्याताः स्थावरा इतरे त्रसाः ॥ ४ ॥

भावार्थ—हे मुने ! संसारी जीव दो प्रकार के होते हैं । एक त्रस और दूसरे स्थावर । एकेन्द्रिय—मिट्टी पानी, अग्नि वायु और हरितकाय स्थावर जीव कहलाते हैं इसके अतिरिक्त सब जीव त्रस हैं ॥४॥

भव्याः कैवल्य भाजो ये, न भव्या स्तद्विवर्जिता ।
संज्ञिन समनस्कास्ते तथाऽपरऽमनोहृप ॥ ५ ॥

भावार्थ—हे मुनि ! जिन्हें केवल ज्ञान अवश्य प्राप्त होगा उन्हें भव्य कहते हैं और जिन्हें केवल ज्ञान नहीं प्राप्त होगा उन्हें अभव्य कहते हैं । इसी प्रकार मन वाले जीव संज्ञी और मन रहित जीव असंज्ञी कहलाते हैं ॥ ५ ॥

जडत्व समवच्छिन्न श्चैतन्यशून्य लक्षणः ।
निश्चेष्टः सर्वकालेषु, 'सोऽजीव' इतिगौतम ॥ ६ ॥

भावार्थ—हे गौतम । जड़ता से युक्त, चैतन्य से शून्य तथा सब कालों मे निश्चेष्ट रहने वाला तत्त्व 'अजीव' है ॥ ६ ॥

अरूपि रूपिभेदाभ्यामजीवोऽपिद्विधांगतः ।
धर्माधर्म खकालाश्च, मुने ! भेदा अरूपिणः ॥ ७ ॥

भावार्थ— हे मुनि । अजीव के अरूपी और रूपी ये दो भेद होते हैं । धर्मास्तिकाय, अधर्मास्तिकाय, आकाशास्तिकाय और काल द्रव्य, ये अरूपी अजीव के चार भेद हैं ॥ ७ ॥

धर्मा धर्मौ महाभाग ! गति स्थित्युपकारिणौ ।
आकाशस्यावगाहश्च कालो वर्त्तनलक्षणः ॥ ८ ॥

भावार्थ—हे महाभाग । धर्मास्तिकाय और अधर्माऽस्ति काय, गति और स्थिति में, उपकारी हैं । स्थान देना, आकाश का लक्षण और वर्त्तनशील होना काल का लक्षण है ॥८॥

वर्ण गन्धरसस्पर्शैः संस्थानेन समं तथा ।
पुद्गल श्चेति संयुक्तो, रूप्यजीवःसमुच्यते ॥ ९ ॥

भावार्थ—हे मुनि । वर्ण, गन्ध रस स्पर्श और सस्थान से युक्त पुद्गल रूपी अजीव कहलाता है ॥९

यत्कर्मविधाना भो लभते सौख्य-सम्पदः ।
तदिष्टं पुण्यनाम्नाख्यं भव्य भावविभावितम् ॥१०॥

भावार्थ—हे मुनि ! जिस कर्म के करने से मनुष्य सुख सम्पत्ति को प्राप्त करता है । वही भव्य भाव से भूषित कर्म पुण्य कहलाता है ॥१०॥

अन्न जलं गृहं शय्या, वस्त्रं योगत्रयं तथा ।
वन्दनाचेति विज्ञेयं पुण्यं नवविधं मुने ॥११॥

भावार्थ—हे मुनि ! अन्न पुण्य जल पुण्य गृह पुण्य शय्या पुण्य वस्त्र पुण्य मन पुण्य वचन पुण्य कायपुण्य और वन्दना पुण्य ये नव प्रकार के पुण्य होते हैं ॥११॥

अशुभं कर्म तत्पापं दुर्गते लक्ष्मसंचितम् ।
भव्याभिलाषिभिः नित्यं हेयं सकलभावतः ॥१२॥

भावार्थ—हे मुनि ! दुर्गति के चिन्ह से संचित कर्म को पाप कहते हैं । भव्यात्मा के इच्छुकों को इस का सर्वथा त्याग करना चाहिये ॥१२॥

हिंसाऽसत्यं तथा चौर्यं दुश्शीलंच परिग्रहः ।
क्रोधोमानः पुनर्माया लोभो द्वेषोऽथरागता ॥१३॥

भावार्थ—हे मुनि ! हिंसा असत्य चोरी दुश्शील परिग्रह क्रोध मान माया लोभ राग और द्वेष ॥१३॥

अभ्याख्यानं कलिश्चैव, पैशुन्यं, निरनिन्दनम् ।
रत्यरती मृषामाये, मिथ्यादर्शन मेव च ॥१४॥

भावार्थ—अभ्याख्यान, कलह, पैशून्य, परनिन्दा, रति-अरति मृषा - माया, और मिथ्या दर्शन ॥१४॥

अष्टादशात्मकाःभेदाः सन्ति तत्पाप कर्मणः ।
ममाज्ञाकारिणो जीवा स्त्यजन्त्येतानि गौतम ॥१५॥

भावार्थ—हे गौतम । पाप कर्म के ये १८ भेद होते हैं । मेरी आज्ञा का पालन करने वाले जीव इनका त्याग करते हैं ॥१५॥

स्रवण पाप पुञ्जानां सर्वानिष्ट विधायिनाँ ।
अस्मिन्नात्महृदे वत्स ! स आस्रव इतीरितः ॥१६॥

भावार्थ—हे वत्स । आत्मा रूपी तालाव में सबका अनिष्ट करने वाले पापों के प्रवेश को आस्रव कहते हैं ॥१६॥

पञ्चेन्द्रियाणि पञ्चैव पापानि चाव्रतास्रवः ।
त्रयो योगाः कषायश्च योगो मिथ्यात्व मेव च ॥१७॥

भावार्थ—हे भद्र । पञ्च इन्द्रियों के पाञ्च आस्रव ५ हिंसादि पाञ्च पापों के पाञ्च आस्रव १०, अव्रतास्रव ११, तीन योगों के तीन आस्रव १४, कषायास्रव १५, योगास्रव १६, मिथ्या त्वास्रव १७, ॥१७॥

प्रमादः स्थापने चापि दानादानेऽविवेकिता ।
आस्रव कर्मेस्त्वेषा सद्बुद्ध भेद विंशतिः ॥१८॥

भावार्थ—प्रमादास्रव १८, भंडोपकरण अयत्नता से ग्रहणास्रव १९, भंडोपकरण अयत्नता से स्थापनास्रव २०, ये बीस भेद आस्रवतत्त्व के हैं ॥१८॥

अवति संवर सम्यक् आत्मानं पाप तापत ।
अतःसम्वरस्त्वेषा मास्रवाणां हि सम्वरः ॥१९॥

भावार्थ—हे मुनि ! जो सम्यक् प्रकार से आत्मा को पापताप से बचाता है और आस्रवों को रोकता है उसे सम्वर कहते हैं ॥१९॥

योगत्रयं यमाः पञ्च पञ्चेन्द्रिय विनिग्रहः ।
सम्यक्त्वव्रत सयोगाः निष्कषायोऽप्रमादिता ॥
स्थापने या च वस्तूनां दाना दाने विवेकिता ।
सम्वर कर्मणस्तेषा सद्बुद्धे ! भेद विंशति ॥(युग्मम्)

भावार्थ—हे सद्बुद्धे ! तीन योगों के तीन सम्वर पाञ्च कर्मों के पाञ्च सम्वर ८ पञ्चेन्द्रिय निग्रह के पाञ्च सम्वर १३ सम्यक्त्व सम्वर १४ व्रत सम्वर १५ सद्योग सम्वर १६, अकषाय सम्वर १७ अप्रमाद सम्वर १८ भंडोपकरण यत्नता से ग्रहण सम्वर १९ भंडोपकरण यतना से स्थापन सम्वर २०, ये सम्वर तत्त्व के २० भेद हैं ॥२० ॥

आत्म लिप्तानि पापानि, प्रमार्जति यथाविधिः ।
यत्त निर्जरा नाम तत्त्वं सप्तम मीरितम् ॥२१॥

भावार्थ—हे मुनि । जो आत्मा पर लगे हुए पापों का प्रमाजन करता है, उसे निर्जरातत्त्व कहते हैं ॥२१॥

सकामाकाम भेदाभ्यां, निर्जरा द्विविधा मुने ।
व्रतिनां सम्भवन्त्याद्या ततश्चान्याऽन्य देहिनाम् ॥२२॥

भावार्थ—हे मुनि । सकाम और अकाम भेद से निर्जरा दो प्रकार की होती है । व्रतियों की सकाम निर्जरा और अन्य देहियों की अकाम निर्जरा होती है ॥२२॥

लौहाग्न्योर्गन्ध पुष्पाणां सद्बुद्धे' तिल तैलयोः ।
कर्मात्मनोस्तथैवापि, सम्बन्धो बन्ध उच्यते ॥२३॥

भावार्थ—हे सद्बुद्धे । जिस प्रकार, लौहपिंड से अग्नि का, पुष्पों से गन्ध का, तिलों से तेल का सम्बन्ध होता है, उसी प्रकार आत्मा के साथ कर्मों के सम्बन्ध को बन्ध कहते हैं ॥२३॥

प्रकृतिश्च स्थितिः सौम्य' तथानुभागयोजना ।
प्रदेशश्चेति विज्ञेयाः बन्ध भेदाश्चतुर्विधाः ॥२४॥

भावार्थ—हे सौम्य । प्रकृतिबन्ध, स्थितिबन्ध, अनुभागबन्ध और प्रदेशबन्ध, ये चार भेद बन्धतत्त्व के होते हैं ॥२४॥

यानि कर्माणि संदन्ति गुणान्यपां तुकर्मणाम् ।
कर्मसु प्रकृते पात प्रकृति बन्ध उच्यते ॥२५॥

भावार्थ—हे मुनि । जो कर्म कर्मों के त्रिम गुणों का पात करते हैं, कर्म प्रकृति का उन कर्मों में प्रपात प्रकृतिबन्ध कहलाता है ॥२५॥

आत्मन पुद्गलानां च सम्बन्धस्य स्थिति मुने ।
काल मर्यादया युक्ता स्थितिबन्धस्य लक्षणम् ॥२६॥

भावार्थ—हे मुनि । आत्मा और पुद्गलों की काल मर्यादा से युक्त स्थिति ही स्थितिबन्ध का लक्षण है ॥२६॥

अमन्द मन्द रूपेण, यया शक्त्या स्वकर्मणाम् ।
फलं प्राप्नोति जीवोऽयं सोऽनुभाग इतीर्यते ॥२७॥

भावार्थ—हे मुनि जिस शक्ति के द्वारा यह जीव अमन्द मन्द रूप से अपने कर्मों के फल को पाता है, वही शक्ति अनुभाग बन्ध कहलाती है ॥२७॥

न्यूनाधिक्य विशिष्टानां परमाणुप्रचारिणाम् ।
स्कन्ध प्रदेश बन्धोऽयं प्रोच्यते मुनिपुंगव ॥२८॥

भावार्थ—हे मुनि पुंगव । न्यूनाधिक परमाणु वाले कर्म स्कन्ध को प्रदेशबन्ध कहते हैं ॥२८॥

सर्वकर्म चयो मोक्तो बन्ध हेतु-विनाशनात् ।
यद्भगः पुमान नित्यं परमानन्दनन्दनः ॥२६॥

भावार्थ—हे मुनि । सब कर्मबन्ध हेतुओं के नाश होने से, जो पद प्राप्त होता है, उसे मोक्ष कहते हैं । इस मोक्ष के मार्ग से चलने वाला मनुष्य परमानन्द का अनुभोग करता है ॥२६॥

यात्र यातः पुमान विज्ञः भूयोनाभ्येति संसृतिम् ।
तद्धाम मोक्ष एवेति, जानिहि मुनिगौतम ॥३०॥

भावार्थ—हे मुनि गोतम । जिस परम स्थान को प्राप्त करके यह विज्ञ मनुष्य, फिर दुबारा संसार मे नहीं आता । उसी परम-धाम को मोक्ष समझो ॥३०।

गृहस्थाद्या स्त्रियोवाऽपि, कोऽपिस्यान्मानवान्वयः ।
स्वपर्यायेण तद्धाम प्राप्तुमर्हत्यसंशयः ॥३१॥

भावार्थ—हे मुनि । गृहस्थ हों या स्त्रिया हों कोई भी मनुष्य मात्र उस धाम को अपनी पर्याय से ही प्राप्त कर सकता है ॥३१॥

ॐ शमिति श्री मत्कविरत्न-उपाध्याय अमृतमुनि
विरचिताया श्रीमद्गौतमगीताया "नवतत्त्व
यागो" नाम चतुर्थोऽध्यायः ।

॥ पञ्चमोऽध्यायः ॥

भगवानुवाच—

सम्यक्त्वं सर्वसिद्धीनां मूलं मन्त्रं गणोत्तम।
स्वर्गापवर्गदं सर्वं दुःखदाहापहारकम् ॥ १ ॥

भावार्थ—हे गणोत्तम! सम्यक्त्व स्वर्ग मोक्ष का दाता सम्पूर्ण दुःख के दाहों को शान्त करने वाला तथा समस्त सिद्धियों का मूलमन्त्र है ॥ १ ॥

सम्यक्त्वं न विना ज्ञानं चारित्र्यं च न तद्विना।
तद्भावेऽघमुक्तिर्न, मोक्षाभावोऽपितद्विना ॥ २ ॥

भावार्थ—हे मुनि। सम्यक्त्व के विना तो ज्ञान नहीं होता, ज्ञान के विना, चारित्र्य नहीं होता, चारित्र्य के विना पापों से मुक्ति नहीं होती और पापों से मुक्ति के विना मोक्ष प्राप्त नहीं होती ॥ २ ॥

संसारेऽस्मिन्नतो नित्यं प्रत्येकै हितकाङ्क्षकैः।
सद्व्रताचार संयुक्तं, सेव्यं सम्यक्त्व मौक्तिकम् ॥ ३ ॥

भावार्थ—हे मुनि। इस ससार में हिताकाक्षी को सद्व्रतों से युक्त सम्यक्त्व रूपी चिन्तामणि का सेवन करना चाहिये ॥ ३ ॥

सम्यक्त्वदर्शकैरत्र पंडितैर्गुण मंडितैः।
लभ्यते जन्म-साफल्यं भावुकं चित्सुखं मुने ॥ ४ ॥

भावार्थ—हे मुनि। सम्यक्त्व दर्शी, गुण-मडित पडित पुरुषों का जन्म ही सफल होता है। और उन्हीं को भावुक चित्सुख की प्राप्ति होती है ॥ ४ ॥

श्रद्धानं नवतत्वानां सम्यक् दर्शन माहितम्।
निसर्गाऽधिगमाभ्यांतद् द्विधा सम्प्रोच्यते मुने ॥ ५ ॥

भावार्थ—हे मुनि। नवतत्त्वार्थ का शुद्ध श्रद्धान सम्यक् दर्शन (सम्यक्त्व) कहलाता है, वह सम्यक्त्व, निसर्ग और अधिगम भेद से दो प्रकार की होती है ॥ ५ ॥

स्वभावतः प्रविज्ञानं नैसर्गिकस्य लक्षणम् ।

परोपदेशतो ज्ञानं तत्वाना मधगस्य तम् ॥ ६ ॥

भावार्थ—हे मुनि ! स्वभाव से ही नवतत्वों का ज्ञान होना नैसर्गिक का लक्षण है, और किसी के उपदेश के द्वारा नवतत्वों का ज्ञान प्राप्त करना 'अभिगम' का लक्षण है ॥ ६ ॥

कारकं रोचकं चाऽपि दीपकं निश्चयात्मकम् ।

व्यवहारममी भेदाः सम्यक्त्वस्य गणाधिप ॥ ७ ॥

भावार्थ—हे गणाधिप ! सम्यक्त्व के कारक, रोचक दीपक निश्चय और व्यवहार ये पांच भेद हैं ॥ ७ ॥

मुनिश्रावक धर्माणां सम्यक्त्वेन सुपालनम् ।

परेषां योजनं तत्र कारकं तमिगद्यते ॥ ८ ॥

भावार्थ—हे मुनि ! साधु धर्म तथा गृहस्थ धर्म का सम्यक् तथा स्वयं पालन करना तथा अन्यों से पालन करवाना कारक सम्यक्त्व कहलाती है ॥ ८ ॥

धर्मध्यानादि कार्येषु, रति सत्येऽपि गौतम ।

तेषां पालनाभावो रोचकस्तं निरूप्यते ॥ ९ ॥

भावार्थ—हे गौतम ! धर्म ध्यान आदि कार्यों में प्रेम होने पर भी, उनका पालन न करना 'रोचक सम्यक्त्व' कहलाती है ॥ ९ ॥

परोपदेशने लग्नाः स्वयं तन्मार्गगास्तुनो ।
समयक्त्वं दीपकं सौम्य, प्रोच्यते भुवि सर्वदा ॥१०॥

भावार्थ—हे सौम्य । जो पुरुष, दूसरों को तो उपदेश देते हैं, पर स्वय उस मार्ग पर नहीं चलते, इस प्रकार का परोपदेश पाण्डित्य 'दीपक सम्यक्त्व' कहलाता है ॥१०॥

आत्मनि देवताबुद्धिं ज्ञानेच गुरुभावनाम् ।
धर्मत्वं सत्क्रियायांते मन्वते निश्चयाह्वयाः ॥११॥

भावार्थ—हे मुनि । आत्मा को अपना देव मानना, ज्ञान को गुरु मानना और सत्यक्रिया को धर्म मानना 'निश्चय सम्यक्त्व' कहलाती है ॥११॥

अर्हद् वस्तु निर्ग्रन्थं गुरुं ये मन्वते मुने ।
अहिंसामेव धर्मश्च व्यवहाराःहिते मताः ॥१२॥

भावार्थ—हे मुनि । अरिहन्त भगवान् को देव मानना निर्ग्रन्थ साधुओं को गुरु मानना और अहिंसामय, धर्म को धर्म मानना 'व्यवहार सम्यक्त्व' कहलाती है ॥१२॥

शङ्काऽऽकाङ्क्षा च सन्देहः परदृष्टिप्रशंसनम् ।
परपाखण्ड संस्तोत्रं दोषाः पञ्चास्य गौतम ॥१३॥

भावार्थ—हे गौतम । शङ्का, काङ्क्षा, सन्देह (विचिकित्सा) पर दृष्टि प्रशसा और परपाखण्ड परिचय ये सम्यक्त्व के पाञ्च दोप हैं ॥१३॥

आप्तोपदिष्टशास्त्रेषु शङ्कापङ्ककलङ्कनम् ।
सत्यं वाऽसत्यमेवैतत् शंका दोष उच्यते ॥१४॥

भावार्थ—हे मुनि ! सर्वज्ञों के द्वारा कहे हुए शास्त्रों में शङ्का करना कि यह सत्य है या असत्य है ? यह शङ्का दोष कहलाता है ॥१४॥

परधर्मसुखां वीक्ष्य धनोत्सवादि सम्पदम् ।
तत्काङ्क्षणं समासस्यात् काङ्क्षा दोषादिगौतम ॥१५॥

भावार्थ—हे गौतम ! अन्यधर्मावलम्बियों की धन उत्सवादि सम्पत्ति को देखकर उसकी इच्छा करना 'काङ्क्षा दोष' कहलाता है ॥१५॥

दानादिव्रतविधानानां धर्म सत्कर्मणां तथा ।
फलमस्ति नवा किंचित् तत्तु सन्देहदूषणम् ॥१६॥

भावार्थ—हे मुनि ! दान धर्म सत्कर्म आदि का कुछ फल है या नहीं है इस प्रकार की विचिकित्सा करना 'सन्देह दोष' है ॥१६॥

दुरात्मनां प्रशंसायां वर्द्धते पाप वर्द्धनम् ।
तत्कारित्वेन विज्ञेयं पर दृष्टि प्रशंसनम् ॥१७॥

भावार्थ—हे मुनि ! दुरात्माओं की प्रशंसा करने से पाप को प्रोत्साहन मिलता है अतः ऐसा करना 'पर दृष्टि प्रशंसन' दोष कहलाता है ॥१७॥

गुणोऽपि दुष्ट संगेन दोषायते न संशयः ।

दुर्जनाना मतः सङ्गा दोषो भवति पञ्चमः ॥१८॥

भावार्थ—हे मुनि । दुष्ट पुरुषों की सगति से गुण भी दूषित हो जाते हैं । अत दुष्ट पुरुषों का सग करना पर पाखंडसस्त्रोत नामक पाञ्चवा दोष है ॥१८॥

मैत्री प्रमोद कारूण्ये मध्यस्थनामिका मुने !

चतस्रः भावनाःज्ञेयाः सम्यक्त्व व्रतिनोभुवि ॥१९॥

भावार्थ—हे मुनि । सम्यक्त्व व्रतियों की, मैत्री, प्रमोद कारूण्य और मध्यस्थ ये चार भावनाए होती है ॥१९॥

मोहराग समिद्धं तं ज्वलन्तं वैर-पावकम् ।

मानसाश्रयिणं प्राणी शमयेन्मित्रताम्बुना ॥२०॥

भावार्थ—हे मुनि । मोह—राग से प्रदीप्त, मन में जलती हुई द्वेषाग्नि को, मित्रता के जल से शान्त करे ॥२०॥

भ्रातृवत्सर्वजीवेषु भेदभावं विहाय यः ।

सन्मैत्री भावनाभावं सम्पश्यति स पण्डितः ॥२१॥

भावार्थ—हे गौतम । जो मनुष्य भेद भाव को त्याग कर सब जीवों में भाई के समान सन्मैत्री भाव रखता है वही सच्चा पण्डित है ॥२१॥

विपुलापद् गृहीतोऽपि निमज्जन् दुःखसागरे ।
धर्मपोतावभृति मुञ्च तु, न मैत्रानाविकं मुने ॥२२॥

—हे मुनि ! संसार रूपी समुद्र में अनेक आपत्तियों से ग्रस्त होकर भी धर्मपोत का आश्रय लेने वाला मनुष्य मैत्री रूपी नाविक को न छोड़े ॥२२॥

परकियोन्नतिं दृष्ट्वा ज्वलति यस्य मानसम् ।
सोऽविवेकी विमूढात्मा, भस्मतां याति गौतम ॥२३॥

भावार्थ—हे गौतम ! जो मनुष्य दूसरे की उन्नति को देखकर जलता है, वह अविवेकी अपना ही नाश करता है ॥२३॥

गुणिनं च परोत्थानं दृष्ट्वा मोदत पण्डितः ।
सूर्योदये यथा पद्म स्फुरति विकसे वने ॥२४॥

भावार्थ—हे मुनि ! पण्डित पुरुष को, गुणी जन और दूसरे का उत्थान देखकर सूर्य-दर्शन से विकसित कमल की भाँति प्रसन्न होना चाहिए ॥२४॥

धर्मवृक्षस्य मूलं हि कारुण्यं मुनि पुङ्गव ।
जनता यद्विना शून्या निर्गन्धा इव किंशुका ॥२५॥

भावार्थ—हे मुनि पुङ्गव ! धर्म वृक्ष का मूल करुणा ही है, इस के बिना सम्पूर्ण जनता गन्ध-रहित पुष्पों के समान है ॥२५॥

दीनान् हीनान्नपाङ्गांश्च वीक्ष्य योन विद्रूयते, ।
अफल जन्म तस्यात्र, जनन्ना क्लेश-कारिणः ॥२६॥

भावार्थ— हे मुनि । दीन, हीन, और अपाङ्ग लोगों को देखकर जिसका हृदय द्रवित नहीं होता, उसका जन्म ससार मे केवल माता को कष्ट देने के लिये व्यर्थ हुआ है ॥२६॥

हिंसा दग्धं स्वहृत्पद्मं कारुण्य-पयसा जनाः ।
भूयोभूयः प्रसिञ्चन्तु भूतलेऽत्र गणोत्तम ॥२७॥

भावार्थ—हे गणोत्तम । हिंसा से जले हुए हृदय कमल को कारुण्य के जल से वार २ सिंचन करना चाहिये ॥२७॥

दीनाः निरङ्गिनोवृद्धाःविधवाः दैवपीड़िताः ।
अनाथाः निर्धनाः हीनाः कारुण्य-कामुकाश्रमी ॥२८॥

भावार्थ – हे मुनि । दीन, अपाङ्ग, वृद्ध, विधवा, भाग्यपीडित, अनाथ, निर्धन और हीन, ये मनुष्य सदा कारुण्य की कामना करते हैं ॥२८॥

मध्यस्थभावना धार्या दग्धु दुरित संहतिम् ।
यद्विना चित्तवैषम्य तस्माच्च पतनं ध्रुवम् ॥२६॥

भावार्थ—हे मुनि । पापों के समूह को नष्ट करने के लिये, मध्यस्थ भावना धारण करनी चाहिये । इसके विना चित्त में विषमता होती है । जिस से अवश्य ही पतन हो जाता है ॥२६॥

सेवायां निजधर्मस्य सहिष्णु र्मानवो भवेत् ।

न कोपं न विषादं वा विदध्यात् प्रतिपक्षिषु ॥१० ॥

भावार्थ—हे मुनि ! अपने धर्म की सेवा में मनुष्य को सहनशील रहना चाहिये । अपने प्रतिपक्षियों पर कभी विषाद या क्रोध नहीं करना चाहिये ॥१० ॥

संलग्नाः सन्ति ये पापे दुर्धियस्तु विरोधिनः ।

बोध्याः मृदुवचोभिस्ते नावमन्याः कटूक्तिभिः ॥११॥

भावार्थ—हे मुनि ! पाप में लगे हुए, दुर्बुद्धि विरोधी पुरुषों को मीठे वचनों से समझाना चाहिये । कठोर वचनों से उनके साथ बर्ताव नहीं करना चाहिये ॥११॥

सदासम्यक्त्वं भावय आत्मतत्त्वाभिलाषुकैः ।

नैवैतत्सम मत्रान्यत् विशिष्टं वस्तु गौतम ॥१२॥

भावार्थ—हे गौतम ! आत्मतत्त्व के अभिलाषियों को सदा सम्यक्त्व का भावन करना चाहिये। सम्यक्त्व से बढ़कर संसार में और कोई विशिष्ट वस्तु नहीं है ॥१२॥

निस्तारका यथा रात्रिः कासारः सलिलं विना ।

शीर्षं विना यथा देहः सम्यक्त्वेन विनात्मनः ॥१३॥

भावार्थ—हे मुनि ! जिस प्रकार तारों के बिना रात्रि, जल के बिना तालाब और शीश के बिना देह, अशोभनीय होती है, उसी प्रकार सम्यक्त्व के बिना यह मनुष्य भी शोभा नहीं पाता ॥१३॥

मिथ्यादेवं कुधर्मं च कुगुरुं योऽभिवन्दति ।
समिथ्या दृष्टि-संयुक्तो दुर्गति याति गौतम ॥३४॥

भावार्थ—हे गौतम । रागी द्वेषी देव, कुधर्म, और कुगुरु को जो मानता है, वह मिथ्या दृष्टि दुर्गति में जाता है ॥३४॥

दोषायन्ते गुणाःसर्वे मिथ्यात्वस्य विधारणात् ।
अम्लत्व योगतः सर्वे पयो दोषायते यथा ॥३५॥

भावार्थ—हे मुनि । जिस प्रकार खटाई के योग से दूध फट जाता है, उसी प्रकार मिथ्यात्व के योग से सम्पूर्ण गुण दुषित हो जाते हैं ॥३५॥

चिन्तामणिर्हि रत्नेषु गरीयान् गण्यते यथा ।
तथैव गुण संघाते सम्यक्त्वं मौक्तिकायते ॥३६॥

भावार्थ—हे मुनि । जिस प्रकार सम्पूर्ण रत्नों में चिन्तामणि रत्न प्रधान हैं, उसी प्रकार सम्पूर्ण गुण समुदाय में 'सम्यक्त्व' ही प्रधान है ॥३६॥

वीतरागोक्त तत्त्वेषु विश्वसन्त्येव ये जनाः ।
ते सम्यक्त्व समापन्नाः क्षिप्रं मोक्षायनायिनः ॥३७॥

भावार्थ—हे मुनि । जो लोग वीतराग भगवान् की वाणी पर विश्वास रखने वाले हैं वे ही सच्चे सम्यक्त्वी हैं । उन्हें शीघ्र ही मोक्ष मार्ग प्राप्त होगा ॥३७॥

न सम्यक्त्वी कश्चिद् दुःखं समाप्नोत्यत्र गौतम ।
स तु पापाविरिक्तस्ते मुच्यते सर्वबन्धनात् ॥३८॥

भावार्थ—हे मुनि ! सम्यक्त्वी कभी कोई दुःख नहीं पाता, बल्कि पापों से रहित होने के कारण वह सब बन्धनों से मुक्त हो जाता है ॥३८॥

त्रस्तानामैहिकैर्दुःखैस्तथा च तत्र सम्भवैः ।
समुद्धाराय जीवानां योगोऽयं परिकीर्तितः ॥३९॥

भावार्थ—हे गौतम ! ऐहिक तथा पारलौकिक दुःखों से सन्तप्त जीवों का उद्धार करने के लिये यह सम्यक्त्व ज्ञान मैंने कहा है ॥३९॥

इति श्री सत्कविरत्न-उपाध्याय अमृतमुनि विरचितायां श्रीमद्गौतमगीतायां "सम्यक्त्व योगो" नाम पञ्चमोऽध्यायः ।

॥ षष्ठोऽध्यायः ॥

भगवानुवाच—

ज्ञायते जगतस्तत्त्वं यस्य तीक्ष्ण निरीक्षणैः ।
अज्ञानान्धविनाशाय तदेवज्ञान मुच्यते ॥ १ ॥

भगवान बोले—

भावार्थ—हे मुनि । जिस के तीक्ष्ण निरीक्षण से जगत का सम्पूर्ण तत्व जाना जाता है अज्ञान रूपी अन्धकार के नाशार्थ उसी को ज्ञान कहते हैं ॥ १ ॥

गौतम उवाच—

ज्ञानक्रियद्विधं मोक्ष लोकचक्षुः प्रकाशकम् ।
तत्सर्वं श्रोतुमिच्छामि विस्तरा दुच्यतां प्रभो ॥ १ ॥

गौतम ने कहा—

भावार्थ—हे प्रभो । वह लोक चक्षु का प्रकाशक ज्ञान कितने प्रकार का है । इसका सम्पूर्ण सविस्तर वर्णन सुनाने की कृपा कीजिये ॥ १ ॥

भगवानुवाच —

मतिज्ञानं श्रुतज्ञानं मवधिज्ञान मेवच ।
मनःपर्यायकेवलन्वे ज्ञानं पञ्चविध मुने ॥ २ ॥

भगवान बोले—

भावार्थ—हे मुनि ! मति ज्ञान श्रुत ज्ञान अवधिज्ञान मनःपर्याय ज्ञान और केवल ज्ञान भदों से ज्ञान के पांच भेद हैं ॥२॥

श्रुतं चक्षुस्तथा घ्राणं, जिह्वा, स्पर्शो महामुने ।
पञ्चमात्रं मनोऽसन्यं मतिज्ञानं तदुच्यते ॥ ४ ॥

भावार्थ—हे महामुने । श्रुत चक्षु, घ्राण जिह्वा स्पर्श, और मन से उत्पन्न होने वाले ज्ञान को मतिज्ञान कहते हैं ॥ ४ ॥

मतिः स्मृतिस्तथा संज्ञा, चिन्तावाभिनिबोधनम् ।
मति ज्ञानस्य बोध्यानि नामान्तराणि गौतम ॥ ५ ॥

भावार्थ—हे गौतम ! मति स्मृति संज्ञा चिन्ता और अभिनिबोध ये मतिज्ञान के नामान्तर हैं ॥ ५ ॥

अवग्रहमति विद्वनीहा बुद्धिस्तथा मता ।
अवायो धारणा चे ति मतिज्ञानं चतुर्विधम् ॥ ६ ॥

भावार्थ—हे विद्वन् । अवग्रह मति, ईहाबद्धि, अवाय और धारणा ये मति ज्ञान के चार भेद हैं ॥ ६ ॥

इन्द्रियैः पञ्चभिःक्कापि कस्यचिद्वस्तुनोग्रहः ।
मनस्यवग्रहोनाम बोधन्यश्चेति गौतम ॥ ७ ॥

भावार्थ—हे गौतम । पञ्च इन्द्रियों द्वारा कहीं भो किसी वस्तु का मन में ग्रहण, अवग्रह कहलाता है ॥ ७ ॥

किमिदं वस्तुकश्चायं केयं चेति प्रयोगतः ।
विशेपार्थाय या वांछा सेहाबुद्धिरितीर्यते ॥ ८ ॥

भावार्थ—हे मुनि । यह क्या वस्तु है ? यह कौन पुरुष है ? यह कौन स्त्री है ? ऐसे प्रश्नों के द्वारा विशेप जानकारी की इच्छा को ईहा बुद्धि कहते हैं ॥ ८ ॥

एतद्वस्तु पदार्थोऽयं, नारीयमिति निश्चयः ।
इत्येव कारकं रूप मावायोहि महामते ॥ ८ ॥

भावार्थ—हे महामते । यह वस्तु है, यह पदार्थ है, यह नारी है, और यह पुरुष है, ऐसा निश्चयात्मक ज्ञान अवाय कहलाता है ॥ ६ ॥

तदेतच्च स पदार्थो, सैवेयं चेति संस्मृतिः ।
भूतकालीन वृत्तान्त, याथात्म्य साक्षिधारणा ॥१०॥

भावार्थ—हे मुनि ! वह वस्तु यही है वह पुरुष यही है वह स्त्री यही है इत्यादि भूत कालीन स्मृति धारणा कहलाती है ॥१०॥

मतिज्ञानं श्रुतज्ञानं साकंतिष्ठत इत्यम् ।
अन्योऽन्याभाव सम्बन्धो नित्यंश्चयोऽनयो मुने ॥११॥

भावार्थ—हे मुनि ! मति ज्ञान और श्रुतज्ञान ये दोनों साथ रहते हैं । इन दोनों का अन्योऽन्याभाव सम्बन्ध समझना चाहिये ॥११॥

वर्णावर्णे समं मिथ्या संज्ञयसंज्ञापनादिकं ।
अन्तानन्ते गमागम्ये, चाङ्ग अङ्गादि रित्यपी ॥१२॥

भावार्थ—हे मुनि ! वर्ण श्रुत अवर्ण श्रुत सम श्रुत मिथ्या श्रुत संज्ञि श्रुत असंज्ञि श्रुत आदि श्रुत अनादि श्रुत अन्त श्रुत अनन्त श्रुत गम श्रुत आगम श्रुत अङ्ग श्रुत अङ्गबाह्य श्रुत य श्रुत ज्ञान के १४ भेद हैं ॥१२॥

स्वर व्यञ्जनसंभेदोह्रस्वदीर्घ विशेषनम् ।
तदक्षरात्मकं भद्र । पर्वश्रुतमितीर्यते ॥१३॥

भावार्थ—हे भद्र ! स्वर व्यञ्जन ह्रस्व दीर्घ आदि अक्षरात्मक विशेषण वर्ण श्रुत कहलाता है ॥१३॥

छिक्का हिक्कादि शब्दानां यत्र ध्वन्यात्मिका ध्वनिः।
अवर्णश्रुतमित्येतत्प्रबोध्यं मुनिसत्तम ॥१४॥

भावार्थ—हे मुनि सत्तम। छींक, हुचकी आदि की अनक्षरात्मक ध्वनि को अवर्ण श्रुत कहते हैं ॥१४॥

समनस्कैःकृतं कार्यं संज्ञिश्रुतं हि गौतम।
अमनस्क विचारस्तुतदसंज्ञि श्रुतं सदा ॥१५॥

भावार्थ—हे गौतम। मनोभाव सहित मनुष्यों द्वारा किया गया कार्य सज्ञी श्रुत कहलाता है। और मन रहित जीवों का कार्य असज्ञी श्रुत है ॥१५॥

सर्वज्ञानां श्रुतज्ञानां सर्वलोक हितैषिणां।
सत्यं, शिवं शुभोपेतं दत्तं ज्ञानं समश्रुतम् ॥१६॥

भावार्थ—हे मुनि। सर्वज्ञ, शास्त्रज्ञ, सम्पूर्ण लोक के हितैषी भगवान् का दिया हुआ सत्य, शिव और कल्याण कारी ज्ञान ही समश्रुत कहलाता है ॥१६॥

मिथ्यादृष्टिकृतं यद्यत् पापाप्लावित मानसैः।
कामशास्त्रादि निर्माणं मिथ्याश्रुतंहितत्समम् ॥१७॥

भावार्थ—हे मुनि। मिथ्या दृष्टि लोगों द्वारा बनाए गए मिथ्या काम आदि शास्त्रों को मिथ्या श्रुत कहते हैं ॥१७॥

तदेतच्च स एवायं सैवेयं येति संस्मृतिः ।
भूतकालीन वृत्तान्त, याथार्थ्य साहिधारणा ॥१०॥

भावार्थ—हे मुनि ! यह वस्तु वही है यह पुरुष वही है यह स्त्री वही है इत्यादि भूत कालीन स्मृति धारणा कहलाती है ॥१०॥

मतिज्ञानं श्रुतज्ञानं साकंतिष्ठत इत्यमू ।
अन्योऽन्याभाव सम्बन्धो नित्यंह्ययोऽन्ययो मुने ॥११॥

भावार्थ—हे मुनि ! मति ज्ञान और श्रुतज्ञान ये दोनों साथ रहते हैं । इन दोनों का अन्योऽन्याभाव सम्बन्ध समझना चाहिये ॥११॥

वर्णावर्णे समं मिथ्या संज्ञसंज्ञयाद्यनादिके ।
अन्तानन्ते गमागम्ये, चाङ्ग ऽङ्गवाहि रित्यमी ॥१२॥

भावार्थ—हे मुनि ! वर्ण श्रुत अवर्ण श्रुत सम श्रुत, मिथ्या श्रुत संज्ञि श्रुत असंज्ञि श्रुत आदि श्रुत अनादि श्रुत अन्त श्रुत अनन्त श्रुत गम श्रुत आगम श्रुत अङ्ग श्रुत अङ्गबाह्य श्रुत ये श्रुत ज्ञान के १४ भेद हैं ॥१२॥

स्वर व्यञ्जनसंभेदोह्रस्वदीर्घ विवेचनम् ।
तदक्षरात्मकं भद्र ! वर्णश्रुतमितीर्यते ॥१३॥

भावार्थ—हे भद्र ! स्वर व्यञ्जन ह्रस्व दीर्घ आदि सम्पद अक्षरात्मक विवेचन वर्ण श्रुत कहलाता है ॥१३॥

छिका हिकादि शब्दानां यत्र ध्वन्यात्मिका ध्वनिः।
अवर्णश्रुतमित्येतत्प्रबोध्यं मुनिसत्तम ॥१४॥

भावार्थ—हे मुनि सत्तम। छींक, हुचकी आदि की अनक्षरात्मक ध्वनि को अवर्ण श्रुत कहते हैं ॥१४॥

समनस्कैःकृतं कार्यं संज्ञिश्रुतं हि गौतम।
अमनस्क विचारस्तुतदसंज्ञि श्रुतं सदा ॥१५॥

भावार्थ—हे गौतम। मनोभाव सहित मनुष्यों द्वारा किया गया कार्य सज्ञी श्रुत कहलाता है। और मन रहित जीवों का कार्य असज्ञी श्रुत है ॥१५॥

सर्वज्ञानां श्रुतज्ञानां सर्वलोक हितैषिणां।
सत्यं, शिवं शुभोपेतं दत्तं ज्ञानं समश्रुतम् ॥१६॥

भावार्थ—हे मुनि। सर्वज्ञ, शास्त्रज्ञ, सम्पूर्ण लोक के हितैषी भगवान् का दिया हुआ सत्य, शिव और कल्याण कारी ज्ञान ही समश्रुत कहलाता है ॥१६॥

मिथ्यादृष्टिकृतं यद्यत् पापाप्लावित मानसैः।
कामशास्त्रादि निर्माणं मिथ्याश्रुतंहितत्समम् ॥१७॥

भावार्थ—हे मुनि। मिथ्या दृष्टि लोगों द्वारा बनाए गए मिथ्या काम आदि शास्त्रों को मिथ्या श्रुत कहते हैं ॥१७॥

आदिना सहितं शास्त्रं सादिश्रुतं महामुने ।
आदिना रहितं शास्त्रं मनादिश्रुतमीर्यते ॥१८॥

भावार्थ—हे महामुनि ! आदि सहित शास्त्र सादि श्रुत कहलाता है और आदि रहित शास्त्र अनादि शास्त्र कहलाता है ॥१८॥

अन्तेन सहितं शास्त्रं सान्त श्रुतं समाहितम् ।
अन्तेन रहितं शास्त्रमनन्त श्रुत मुच्यते ॥१६॥

भावार्थ—हे मुनि ! अन्तसहित शास्त्र सान्त श्रुत और अन्त रहित शास्त्र अनन्त श्रुत होता है ॥१६॥

दृष्टिवादाङ्ग स्थस्य ज्ञानं गम श्रुतं मुने ।
एकादशाङ्गिकं ज्ञान मागमश्रुत मुच्यते ॥२०॥

भावार्थ—हे मुनि ! दृष्टिवादाङ्ग श्रुत के ज्ञान को गमश्रुत और एकादशाङ्ग ज्ञान को आगमश्रुत कहते हैं ॥२०॥

द्वादशाङ्गस्या: महावाक्यया ज्ञानमङ्ग प्रविष्टकम् ।
अन्यत्सच्छास्त्र-विज्ञान मङ्गबाह्य श्रुतं मुने ॥२१॥

भावार्थ—हे मुनि ! द्वादशाङ्गी महावाक्यों का ज्ञान, अङ्ग प्रविष्ट कहलाता है तथा इसके अतिरिक्त अन्य सत् शास्त्रों का ज्ञान अङ्गबाह्य श्रुत कहलाता है ॥२१॥

सावधि-रूपि दर्शित्वं मवधिज्ञान मित्यदः ।
तद् द्विधं भवभूतंच क्षयोपशमिकं ततः ॥२२॥

भावार्थ—हे मुनि । समर्यादा रूपी द्रव्यों को देखना अवधि ज्ञान कहलाता है । यह दो प्रकार का है जन्म जात, और क्षयोपशमिक ॥२२॥

जन्मजातं हि यज्ज्ञानं भवभूतं तदुच्यते ।
दैविकं नारकश्चेति द्विविधं तन्महामुने ॥२३॥

भावार्थ—हे महामुने । जन्म जात ज्ञान को भवभूत ज्ञान कहते हैं और वह दैविक तथा नारक भेद से दो प्रकार का होता है ॥२३॥

गौतम उवाच—

कियद्विधाः प्रभो ! देवाः दैविक ज्ञानधारिणः ।
सत्सर्वं विस्तराद्ब्रूहि श्रोतुमिच्छा प्रवर्तते ॥२४॥

भावार्थ—हे प्रभो । दैविक ज्ञान के धारण करने वाले, देव कितने प्रकार के होते हैं । यह सुनने को मेरी इच्छा जागृत है ॥२४॥

भगवानुवाच—

भवनावासिनो भद्र ! व्यन्तरारात्तसादयः ।
ज्योतिष्काश्च विमानस्थाः देवाश्चतुर्विधामताः ॥२५॥

भावार्थ—हे भद्र ! भवन वासी—राक्षसादि व्यन्तर, ज्योतिषी और विमानस्थ ये चार प्रकार के देवता होते हैं ॥२५॥

अधो भूमरधोदशे व्यन्तरा भुवनस्थिता ।
प्रशंसनीय देवाश्च, ऊर्ध्वलोक स्थिता मुने ॥२६॥

भावार्थ—हे मुनि ! व्यन्तर और भुवनपतिदेव इस भूमि से नीचे हैं और प्रशंसनीय देव ऊर्ध्व लोक में स्थित हैं ।॥२६॥

सदाचारान्विताः जीवाः पापताप विवर्जिताः ।
यान्ति स्वर्गे प्रहर्षन्तः सौख्य भोगाय गौतम ॥२७॥

भावार्थ—हे गौतम ! पाप को छोड़ने वाले सदाचारी लोग प्रसन्न होते हुए सुख भोगने के लिये स्वर्ग को जाते हैं ।॥२७॥

स्वर्गे दिव्यं वपुश्चैव, धारयन्ति चमत्कृतिम् ।
यत्र सहस्रवर्षान्ताः स्थिति संस्थीयते मुने ॥२८॥

भावार्थ—हे मुनि ! स्वर्ग में दिव्य शरीर और चमत्कार को यह आत्मा धारण करता है। जहां पर हजारों वर्ष की स्थिति रहती है ॥२८॥

बिन्दु सागरयो र्मध्ये, यदन्तरं परं तप ।
तदत्रादेवदेवानां विभेदा भोग संस्थितौ ॥२९॥

भावार्थ—हे परंतप ! बून्द और समुद्र में जो अन्तर है इतना ही अन्तर देवता और मनुष्यों के भोग की स्थिति में होता है ॥२९॥

तत्र दिवंगतो जीवो भुक्त्वा नैजोज्ज्वलं वयः ।
स्वकर्मणा समभ्येति, नरतिर्यक्षु चाक्वचित् ॥३०॥

भावार्थ—हे मुनि । वहा स्वर्ग मे जाकर भी जीव अपनी उज्वल आयु को भोगकर अपने कर्मों से मनुष्य या तिर्यक् योनि मे प्राप्त होता है ॥३०॥

कियद्विधाः महादेव ? नरकाः दुःख दायकाः ।
तेषां विभेदमाख्याहि, श्रोतु मुत्कं मनोमम ॥३१॥

भावार्थ—हे प्रभो । नरक कितने प्रकार के हैं । मेरा उत्कण्ठित मन उनके भेदों को सुनना चाहता है ॥३१॥

रत्ना च शर्करा, वालुः पङ्काधूमातमः प्रभा ।
महातमः प्रभेत्येते नरकाः सप्त गौतम ॥३२॥

भावार्थ—हे गौतम । रत्ना, शर्करा, वालु, पङ्का, धूमा तमः प्रभा, महातमप्रभा ये सात नरक हैं ॥३२॥

तेऽन्तर्वृत्ताः अधोलोका श्चतुरस्राश्चवाह्यतः ।
अधस्तात्क्षुर संस्थाना स्तमिस्रै रावृताः सदा ॥३३॥

भावार्थ— हे मुनि । वे नरक अन्दर से गोल और बाहर से चौकोर तथा नीचे से क्षुर सस्थानी हैं । सदा अन्धकारमय हैं ॥३३॥

न नक्षत्रं न चापन्द्रः सूर्यस्तत्र न भासते ।
गाढं तमोऽनिशं तत्र स्यादन्धमेवैव नृत्यति ॥२४॥

भावार्थ—हे मुनि ! नरक में नक्षत्र चन्द्रमा सूर्य का प्रकाश नहीं होता बल्कि वहाँ महान् अन्धकार सघनता से नाचता है ॥२४॥

मेदसा पूतिना मांसैः विस्रभा रक्तरञ्जिता ।
कर्कशस्पर्शसंयुक्ता नरकाः सर्वे दुःखदाः ॥२५॥

भावार्थ—हे मुनि ! चर्बी दुर्गन्ध माँस खून से रंगे हुए कठोर स्पर्श से युक्त, सब नरक महान् दुःखप्रद हैं ॥२५॥

शक्ति शूलासिभिन्नै स्तोमरैश्चक्रमूसलैः ।
पट्टिशैर्मुद्‌गरा यैश्च पीड्यन्ते दुर्गति स्थिता ॥२६॥

भावार्थ—हे मुनि । शक्ति, शूल तलवार, भाला छुरी चाक, मूसल कुल्हाड़ी की बड़ी पट्टी और मोगर, आदि से नरकों के जीव पीटे जाते हैं ॥२६॥

बालकापातिपूर्ताय पापकर्मरताय च ।
नरक द्वार मनावृत्तं शरणदेव प्रतीक्षते ॥२७॥

भावार्थ—हे मुनि । बालक, भ्रति धूर्त और पापी मनुष्य के लिये नरक का दरवाजा खुला हुआ हुआ प्रतीक्षा करता है ॥२७॥

कर्मक्षयोपशान्तिभ्यां क्षयोपशमिकं मुने ।
द्वितीयमवधिज्ञान मस्ति तिर्यङ्नरेष्वपि ॥३८॥

भावार्थ हे मुनि । कर्मों के क्षय और उपशम से जो ज्ञान उत्पन्न होता है उसे क्षयोप शमिक अवधि ज्ञान कहते हैं । यह ज्ञान मनुष्य और तिर्यञ्च पचेन्द्रिय मे होता है ॥३८॥

समनस्केषु जीवेषु रूपिभाव समुद्गमः ।
ज्ञायते येन तज्ज्ञानं मनःपर्य्याय उच्येत ॥३९॥

भावार्थ– हे मुनि । सज्ञी जीवों के मन मे रहे हुए रूपि भावों के समुद्गम को, जिस ज्ञान के द्वारा जाना जाता है उसे मन पर्य्याय ज्ञान कहते हैं ॥३९॥

मनः पयर्याकं ज्ञानं द्विभेदेन विभाजितम् ।
ऋजुमतिस्ततो भद्र ! विपुलामतिरित्यपि ॥४०॥

भावार्थ—हे भद्र मन पर्याय ज्ञान के ऋजुमति और विपुला मति नामक दो भेद हैं ॥४०॥

सामान्यतः पदार्थाना मृजुमतोगति र्मुने ।
शुद्धत्वेन च यज्ज्ञानं विपुलामति संभवम् ॥४१॥

भावार्थ हे मुने । पदार्थों का सामान्य ज्ञान ऋजुमति मन पर्याय ज्ञान कहलाता है और पदार्थों का विस्तत ज्ञान विपुला मति मन· पर्याय ज्ञान कहलाता है ॥४१॥

सप्रपाति ऋजुज्ञानं तथा, पापातिकं मुने ।
विपुलं यस्य सम्प्राप्तौ अवश्यं केवलोदयः ॥४२॥

भावार्थ हे मुनि । उन में ऋजुज्ञान तो नष्ट हो सकता है परन्तु विपुल ज्ञान की प्राप्ति होने पर पतन नहीं होता । बल्कि सदा समय अवश्य ही केवल ज्ञान हो जाता है ॥४२॥

त्रिकालदर्शि यज्ज्ञानं लोकालोकावलोककम् ।
केवलं ज्ञान मित्येतत्सर्वतत्त्व प्रकाशकम् ॥४३॥

भावार्थ—हे मुनि । त्रिकालदर्शी लोक तथा आलोक का दर्शक सर्वतत्त्व का प्रकाशक ज्ञान ही केवल ज्ञान होता है ॥४३॥

त्रिलोकेषु सम तेन ज्ञानमन्यन्न विद्यते ।
द्रव्याणि यत्र भासन्ति दृश्यन्ते पूर्ण भावतः ॥४४॥

भावार्थ—हे मुनि । तीन लोकों में केवल ज्ञान के समान अन्य कोई ज्ञान नहीं है जिस में सम्पूर्ण पदार्थ पूर्णतया दृष्टि गत होते हैं ॥४४॥

ज्ञानं धर्म स्तपो ज्ञानं ज्ञान कर्म सुखोदयम् ।
ज्ञानेऽस्मिन्न किमन्यत्तन् विद्यते मुनिपुङ्गव ॥४५॥

भावार्थ—हे मुनि पुङ्गव । ज्ञान ही धर्म है । ज्ञान ही तप है और ज्ञान ही सुखमय कर्म है । संसार में ऐसी कौनसी वस्तु है जो ज्ञान में नहीं है ॥४५॥

ज्ञानहीनो जनो लोके, पशोरिव प्रवर्त्तते ।
अतोज्ञानात्परं तत्त्वं नैवास्ति भुवनत्रये ॥४६॥

भावार्थ—हे मुनि । ज्ञान हीन मनुष्य पशु के समान होता है । अत ज्ञान से वढकर और तत्व तीन लोक में कोई नहीं है ॥४६॥

सिद्धान्तोऽयं सदा मान्यः पूर्वं ज्ञानं ततोदया ।
ज्ञानेन सदृशं नैव कोऽपि मिथ्यात्व पापहः ॥४७॥

भावार्थ—हे मुनि । यह सिद्धान्त मान्य है कि पहले ज्ञान और पीछे दया होनी चाहिये ज्ञान के समान, मिथ्यात्व को नष्ट करने वाला अन्य कोई नहीं है ॥४७॥

सर्वज्ञानोत्तमं वत्स, श्रुतज्ञानं विशेषतः ।
तस्यैवोपासको जीवो मोक्षंयाति न संशयः ॥४८॥

भावार्थ—हे वत्स । सव ज्ञानों में श्रेष्ठ, विशेष कर, श्रुत ज्ञान ही है । उसका उपासक जीव, मोक्ष को प्राप्त होता है इस मे कोई सन्देह नहीं ॥४८॥

सम्यक्त्वे चास्ति सज्ज्ञानं द्वाभ्यां चारित्र्यजन्मता ।
रत्नत्रयमिदं प्रोक्त मोक्षमार्गप्रदं शिवम् ॥४९॥

भावार्थ—हे मुनि । सम्यक्त्व में, सद् ज्ञान का निवास होता है। सम्यक्त्व और सद्ज्ञान से चरित्र का जन्म होता है इस प्रकार, यह रत्न त्रय, कल्याण कारी मोक्ष मार्ग के देने वाला है ॥४९॥

ॐ शमिति श्रीमत्कवि रत्न उपाध्याय अमृत मुनि विरचिताया श्रीमद् गौतम गीताया "ज्ञान योगो नाम" षष्ठोऽध्याय

॥ सप्तमोऽध्यायः ॥

गौतम उवाच—

लोकोपकार मुद्दिश्य विरच्यतां देशनाशुभा ।
जगत्संतप्त जीवानां यया शान्तिः स्थिरा भवेत् ॥ १ ॥

भावार्थ—हे भगवन् ! लोकोपकार के लिये उस अपनी शुभ देशना को दीजिये जिस के द्वारा संसार के सन्तप्त जीवों की अमभ्यामही हुई शान्ति स्थिर हो जाय ॥ १ ॥

भगवानुवाच —

अत्रसंसारपाथोधौ बहुमोहादयोऽम्चराः ।
यद्ग्रस्ताः जीव संघाताः दुखिताः सन्ति गौतम ॥२॥

भावार्थ – हे गौतम । इस ससार-समुद्र मे मोह आदि अनेक जलजन्तु मगर मच्छ आदि हैं। जिन से ग्रस्त, जीवों के समुदाय, दुखित है ॥२॥

व्यतीतः समयोनैव भूयोऽभ्येति कदाचन ।
अतः कार्यं द्रुतं कार्यं, निष्प्रमादेन गौतम ॥३॥

भावार्थ – हे गौतम। बीता हुआ समय फिर दुबारा नहीं आता। अत करणीय कार्य को निष्प्रमाद भाव से शीघ्र ही कर लेना चाहिये ॥ ३ ॥

कियन्तो बाल्यकाले वा कियन्तो यौवनेथवा ।
कियन्तश्च जरायुक्ताः म्रियन्ते गर्भ संश्रिताः ॥ ४ ॥

भावार्थ– हे मुनि। कितने ही बाल्यकाल में, यौवन काल में, बुढापे में और कितने ही गर्भ में ही मर जाते है ॥ ४ ॥

यथाश्येनो निजावेगैं निहन्ति चटकादिकान् ।
तथैवकाल-सर्पोऽयं, लोकान् कवलयत्यहो ॥ ५ ॥

भावार्थ—हे गौतम ! जिस प्रकार बाज, बल पूर्वक चिड़िया आदि पक्षियों को, मार देता है, उसी प्रकार यह काल रूपी सर्प, लोगों को खा जाता है ॥ ५ ॥

कुटुम्बममत्वे मोहनिमग्नश्चात्र देहवान् ।
जन्मजन्मान्तरेऽत्रैव कष्टमनेकधा ॥६॥

भावार्थ — हे मुनि! कुटुम्ब आदि के मोह में फंसा हुआ यह मनुष्य जन्म जन्मान्तर से अनेक कष्टों को सहता है ॥६॥

शल्योपमास्सर्व भोगा विषरूपाश्च गौतम ।
एतानुपास्य जीवोऽयं भवत्येवान्तकातिथिः ॥७॥

भावार्थ — हे गौतम! संसार के सम्पूर्ण भोग बाण के सदृश और विष के समान हैं इनका सेवन करके जीव काल का अतिथि होता है ॥७॥

प्रलापाः सर्वगीतानि नाट्यं सर्वं विडम्बनम् ।
भारोऽथ भूषणं सर्वं किमन्यद् ब्रूवे समम् ॥८॥

भावार्थ — हे मुनि! संसार के सब गीत प्रलाप हैं सब नाटक विडम्बना हैं सब भूषण भार हैं और क्या कहें संसार में सब दुःख ही दुःख है ॥८॥

क्षणिकानन्ददा भोगाः चिरपीडोपघायकाः ।
मोक्षसौख्यविपक्षाश्च महानर्थकरास्तथा ॥९॥

भावार्थ — हे मुनि! संसार के सब भोग क्षणिक आनन्द देने वाले और अधिक काल तक पीड़ा देने वाले, मोक्ष-सुख के शत्रु तथा महान अनर्थ कारी हैं ॥९॥

यथाकिंपाकजातानां फलानां न फलं शुभम् ।
तथैव भुक्तभोगाना मन्तं स्यान्न सुखावहम् ॥ १० ॥

भावार्थ—हे मुनि । जिस प्रकार किंपाक फलों का फल शुभ नहीं होता, उसी प्रकार भोगे हुए भोगों का अन्तिम परिणाम भी सुखदायी नहीं होता ॥ १० ॥

ये न हिंसा वहिर्भूता रौरवादिषु गामिनः ।
नाना कष्ट-परि श्लिष्टाः जायन्ते मूढ़योनिषु ॥ ११ ॥

भावार्थ—हे मुनि । जो हिंसा आदि पापों का त्याग नहीं करते वे नरक गामी होते हैं और अनेक बार नाना कष्टों से भरी हुई मूढ योनियों मे जन्म लेते हैं ॥ ११ ॥

भोगासक्तो जगत्पृष्ठे भ्रमति छिन्न-जीवनः ।
अभोगी च समस्तेऽस्मिन्, ब्रह्माण्डेऽप्यमरायते ॥१२॥

भावार्थ—हे मुनि । भोगों में आसक्त, मनुष्य ससार में दुखी जीवन व्यतीत करता है । और भोग त्यागी अभोगी, इस ससार मे रहता हुआ भी, अमरता का अनुभव करता है ॥ १२ ॥

कुरङ्गाजिनवासोवा जटाजूट च नग्नता ।
मुण्डनं चन्दनं चेति दुःशीलं नोपरक्षति ॥ १३ ॥

भावार्थ—हे मुनि । मृगछाला धारण, जटाजूट, नग्नता, मुण्डन और तिलक चन्दन आदि शील रहित पुरुष की कोई भी रक्षा नहीं कर सकता ॥ १३ ॥

मनोवचन कायेभ्यो योऽविवेकी स्वविग्रहे ।
वर्णे रूपे च संसक्तः दुःखं वपति गौतम ॥ १४ ॥

भावार्थ—हे गौतम ! जो अविवेकी पुरुष मन वचन काया से अपने शरीर वर्ण रूप में आसक्त रहता है। वह अपने लिये दुःख बोता है ॥ १४ ॥

नश्वरो मानुषो देहस्तथायुरल्पमेव च ।
मत्वा मोक्षं स्थिरं मार्गं निवर्तेताशु भोगतः ॥ १५ ॥

भावार्थ हे मुनि ! मनुष्य देह नश्वर है और आयु अल्प है मोक्ष मार्ग ही स्थिर है ऐसा समझकर शीघ्र ही भोगों से निवृत्त होना चाहिये ॥ १५ ॥

मुच्यन्ते कामभोगेभ्यः काठिन्येनात्र देहिनः ।
व्यापारीव समुद्रं स्य साधवो यान्ति पारं ध्रुवम् ॥१६॥

भावार्थ – हे मुनि ! मनुष्य काम भोगों से बड़ी मुश्किल से छुटकारा पाते हैं परन्तु साधुजन सफल व्यापारी की भांति सरलता से ही भोगों का त्याग करके, संसार समुद्र से पार हो जाते हैं ॥ १६ ॥

मूढा धनं पशुं चैव स्वीयं मत्वा विमुह्यति ।
परमेते न जीवानां कुर्वन्ति त्राणमापदि ॥ १७ ॥

भावार्थ—हे मुनि ! मूढ पुरुष धन धान्य पशु आदि को अपना मान कर उन के मोह में फंस जाता है परन्तु मुसीबत में ये रक्षा नहीं कर सकते ॥ १७ ॥

जन्मदुःखं, जरा दुःख रोगदुःखंच मृत्युकम् ।
अहो दुःखमयं सर्वं कष्टात्कष्टतरं परम् ॥ १८ ॥

भावार्थ- हे मुनि ! इस संसार में, जन्मदुःख, जरादुःख रोगदुःख, मृत्युदुःख, अहो ! और क्या कहूं ! सब ओर महान दुःख ही दुःख है ॥ १८ ॥

अशुचेर्जायते देहःशुच्यभावोऽत्र सर्वथा ।
क्षणं जीवात्मनो वासस्त्यक्त्वाऽन्त्येच पलायनम् ॥१९॥

भावार्थ—हे गौतम ! शरीर अपवित्रता से उत्पन्न होता है अतः अपवित्र ही है । इस में कुछ क्षणों के लिये, जीवात्मा वास करके अन्त मे इसे छोड़ देता है ॥ १९ ॥

स्त्री बन्धुः सुहृत्पुत्रः सर्वे जीवित संगिनः ।
यदा कालाक्रम स्तर्हि त्यजन्ति स्वजनं द्रुतम् ॥२०॥

भावार्थ—हे महा मुनि ! स्त्री, बन्धु, मित्र पुत्र सब जीते जी के साथी हैं, जब काल का आक्रमण होता है तब ये सब अपने साथियों को छोड़ देते हैं ॥ २० ॥

पशुं धनं जनं क्षेत्रं, गृहंधान्यादिकं तथा ।
विवशः प्राणिवर्गोऽत्र, सर्वं त्यक्त्वा विलीयते ॥२१॥

भावार्थ—हे मुनि ! पशु, धन, जन, क्षेत्र, गृह, तथा धान्य आदि, सब को विवशता पूर्वक छोड़कर प्राणिवर्ग, विलीन हो जाता है ॥ २१ ॥

यथा सिंहो निगृह्णाति मृगं निर्दयता बलात् ।
तथा मृत्यु सम्प्रजीवं, नयति माया-संयुतम् ॥ २२ ॥

भावार्थ—हे मुनि । जिस प्रकार मृगों के झुड में से सिंह किसी एक मृग को निर्दयता पूर्वक पकड़ ले जाता है। उसी प्रकार संसार में से मृत्यु भी इस प्राणी को खींच ले जाती है ॥ २२ ॥

यावन्तः प्राणिनोलोके, ते कृत कर्मभोगिन ।
शुभाशुभं कृतं कर्म फलं भव यथायथम् ॥ २३ ॥

भावार्थ—हे गौतम संसार के सब प्राणी अपने कर्मों का फल भोगते हैं जैसा भी शुभा शुभ कर्म होता है उस का वैसा ही फल होता है ॥ २३ ॥

यथा सर्पाननस्थोऽपि भेकोऽपि मशकान् मुने ।
तथा कालानने संस्थाः जीवा भोगोपभोगिन ॥२४॥

भावार्थ—हे मुनि । जिस प्रकार सर्प के मुह में फंसा हुआ मेढक मच्छरों को खाता है उसी प्रकार सदा काल के गाल में लगा हुआ यह जीव भोगों के भोगने की चेष्टा करता है ॥२४॥

यो मूढः कामभोगानां दोषेष्वासक्ति मागत ।
भ य शून्यस्तवसौ मन्द्रः कफरिलष्टेव मक्षिका ॥२५॥

भावार्थ—हे मुनि । जो मूढ मनुष्य काम भोगों में आसक्त है उसका जीवन कफ में फंसी हुई मक्खी के समान है ॥२५॥

भोगेष्वासक्तिमापन्नाः कुर्वते पापकर्मकम् ।
तेन लोकद्वये दुःखं प्राप्नुवन्ति न संशयः ॥ २६ ॥

भावार्थ - हे मुनि । जो मनुष्य भोगों मे आसक्त होकर पाप कर्म करते है, वे इस लोक और परलोक दोनों जगह दुःख पाते हैं ॥ २६ ॥

मूर्खो हिंसकः पापी मायावी पिशुनोऽधमः ।
पापे श्रेयोऽनुजानाति, परं तस्य विडम्बना ॥ २७ ॥

भावार्थ—हे मुनि । मूर्ख, पापी मायावी, हिंसक, पिशुन और अधम पुरुष पाप में अपना कल्याण समझता है । परन्तु यह उसकी झूठी विडम्बना है ॥ ॥२७॥

शरीर स्त्री धनाद्यन्धो, रागद्वेषादिकर्मभिः ।
भवभ्रमण मित्येतद्, वर्द्धयत्यात्मनः स्वयम् ॥ २८ ॥

भावार्थ—हे मुनि । शरीर, स्त्री, धन आदि में, रागद्वेष के द्वारा अन्धा हुआ मनुष्य, अपने जन्म, मरण को बढ़ाता है ॥२८॥

तुच्छ जीवन मुद्दिश्य निर्दयी पापमीहते ।
स घोरान्धयुतं तीव्रं नरकं याति गौतम ॥ २६ ॥

भावार्थ - हे गौतम । तुच्छ जीवन के लिए जो निर्दयी मनुष्य पाप करता है । वह घोर अन्धकार युक्त तीव्र नरक मे जाता है ॥ २६ ॥

सुखं चेदीहते जीवो दुःखेभ्यश्च समतिक्रमम् ।
सदास्वनित्यभोगेभ्यः पृथक्तिष्ठेद् विचारतः ॥३० ॥

भावार्थ – हे मुनि ! यदि यह जीव दुख से छुटकारा पाकर सुख पाहता हो तो इसे इन अनित्य भोगों से दूर रहना चाहिये ॥३०॥

सर्पिर्लवणतैलैधस्तंडुलादिक चिन्तने ।
एवं पूर्वे मवत्यायु पर्य चिन्ता न नश्यति ॥३१ ॥

भावार्थ—हे मुनि ! इस मनुष्य का जीवन नून तेल लकड़ी की चिन्ता में ही व्यतीत हो जाता है पर उसकी चिन्ता का नाश नहीं होता ॥ ३१ ॥

युवत्वं वार्द्धकाक्रान्तं नैरोग्यं रुग्भिरावृतम् ।
जीवनं मृत्युनालीढं तदपीहा न हीयते ॥३२ ॥

भावार्थ—हे मुनि ! युवावस्था बुढ़ापे से आक्रान्त है आरोग्य रोगों से आवृत है और जीवन मृत्यु से चाटा हुआ है तो भी इस मनुष्य की तृष्णा शान्त नहीं होती ॥ ३२ ॥

अतो जीवन सार्थक्यं कुर्वता प्राणिनामुत्तमम् ।
वैराग्यमाश्रमाश्रित्य लभ्यतां मोक्ष संपदा ॥ ३३ ॥

भावार्थ—हे मुनि ! अतः जो मनुष्य जीवन की सफलता चाहता हो उसे वैराग्य का सहारा लेकर परममोक्ष धाम को प्राप्त करना चाहिये ॥ ३३ ॥

ॐ शान्तिः श्रीमत्कवि रत्न उपाध्याय अमर मुनि विरचितायां श्रीमद् गौतम गाथायां "वैराग्य योगोनाम" सप्तमोऽध्यायः

———

—: अष्टमोऽध्याय :—

गौतम उवाच—

> कियद्विधं तपो देव ! किञ्च तस्यास्ति लक्षणम् ।
> तत्सर्वं श्रोतुमिच्छामि समासेन विविच्यताम् ॥ १ ॥

भावार्थ—हे देव ! तप, कितने प्रकार का है। और उसका लक्षण क्या है ? तपस्या के सब वृतान्त को सुनना चाहता हूं। कृपया विस्तृत रूप से कहिये ॥ १ ॥

भगवानुवाच—

शुद्धं भवति जीवात्मा येन तद्धि तपो मुने ।

क्रमशस्तस्य रूपाणि विवेच्यन्ते यथा विधम् ॥ २ ॥

भावार्थ—हे मुनि ! जिसके द्वारा यह आत्मा शुद्ध होती है उसे तप कहते हैं। उनका यथाक्रम वर्णन किया जाता है ॥ २ ॥

तपोद्विविध मास्यातं बाह्याभ्यन्तर भेदतः ।

तद्बाह्यं षट् प्रकारं स्यात्तथाऽभ्यन्तर मेव च ॥ ३ ॥

भावार्थ—हे मुनि ! बाह्य और आभ्यन्तर भेद से तप दो प्रकार का है। दोनों के छः छः भेद हैं ॥ ३ ॥

बाह्यस्यानशनं विद्वन्नूनौदर्यञ्च भैक्षिकम् ।

रसत्यागो वपुःक्लेशः प्रति संलीन्य मित्यमी ॥ ४ ॥

भावार्थ— हे विद्वन् ! बाह्य तप के अनशन ऊनोदर्य भैक्षिक रसत्याग वपुःक्लेश प्रतिसंलीन्य ये छः भेद हैं ॥ ४ ॥

मर्यादासहितं वत्स ! समर्यादमथान्तरा ।

निर्मर्यादं तपः प्रोक्तं ततोऽनशनमित्यदः ॥ ५ ॥

भावार्थ—हे वत्स ! मर्यादा सहित और मर्यादा रहित भेद से अनशन तप दो प्रकार का होता है ॥ ५ ॥

द्रव्य भावादि भेदाभ्यामूनौदर्य तपो मुने ।
द्विविधं तत्समाख्यातं तस्य भेदानिमान शृणु ॥ ६ ॥

भावार्थ—हे मुनि । ऊनौदर्य्य तप के द्रव्य और भाव ये दो भेद हैं । इनकी व्याख्या सुनो ॥ ६ ॥

यस्याहारो भवेद्यावान् ततः स्वल्पस्य सेवनम् ।
द्रव्योनौदर्य माख्यात प्रथमं चात्र गौतम ॥ ७ ॥

भावार्थ—हे गौतम । जिस मनुष्य का जितना आहार है उससे कम खाना द्रव्य ऊनौदर्य तप है ॥ ७ ॥

अल्परणोऽल्प शब्दश्च, स्वल्पकाषायिक तथा ।
भावोनौदर्य मित्येतत्तप. प्रोक्तं महामते ॥ ८ ॥

भावार्थ—हे महामते । अल्पकलह, अल्पशब्द और अल्प कषाय ये भाव ऊनौदर्य के भेद हैं ॥ ८ ॥

द्रव्यं क्षेत्रं तथा कालो भावश्चेति चतुर्विधम् ।
भैक्षिकंतप इत्युक्तं द्वितीयं विदुषां वर ॥ ९ ॥

भावार्थ—हे विद्वानों मे श्रेष्ठ । द्रव्य, क्षेत्र काल और भाव से भैक्षिक तप चार प्रकार का है ॥ ९ ॥

पदार्थानिति संख्याप्य तथा भासेवनं शुभम् ।
द्रव्य भैक्षिकं नाम तदेतत्तप उच्यते ॥ १० ॥

भावार्थ—हे मुनि ! पदार्थों की संख्या करके उनका सेवन करना द्रव्य भैक्षिक तप कहलाता है ॥ १ ॥

ग्रामपुर्यादि मर्यादा ममिनिर्मकल्प्य मानसे ।
य' समभ्येति भिक्षायै तत्क्षेत्रं तप उच्यत ॥ ११ ॥

भावार्थ—हे मुनि ! ग्राम शहर आदि की मर्यादा को मन में लेकर भिक्षा को जाना क्षेत्र भैक्षिक तप कहलाता है ॥ ११ ॥

यस्यस्थानस्य य कालोभिक्षाया' सम्भवन्मुने ।
तत्र तत्रैव भिक्षार्थं गमनं काल उच्यते ॥१२॥

भावार्थ—हे मुने ! जिस स्थान पर भिक्षा का जो काल हो उसी समय पर भिक्षा के लिये जाना काल भैक्षिक है ॥ १२ ॥

अमुकं भोजनं प्राप्तमिति संकल्प्य मानसे ।
अमुकेन प्रदर्यतत् समाव' प्राच्यत मुने ॥१३॥

भावार्थ—हे मुनि ! वह भोजन मिले और उससे दिया जाय तब ग्रहण करूँगा यह सोचकर भिक्षा को जाना भाव भैक्षिक है ॥ १३ ॥

सरसानां पदार्थानां दुग्धादीनां महामुने ।
सम्यक्त्वेन परित्यागः तद्रस त्याग उच्यते ॥१४॥

भावार्थ - हे मुनि । दुग्ध आदि सरस पदार्थों का सम्यक् प्रकार से त्याग करना, रस त्याग कहलाता है ॥ १४ ॥

विधिपूर्णरसत्यागा दुदेतीन्द्रियसञ्जयः ।
तस्मान्मनोजयो भद्र ! मनोजिष्णुःसदा सुखी ॥१५॥

भावार्थ – हे भद्र । विधि पूर्वक रस के त्याग से इन्द्रिय जय होती है। इन्द्रिय जय से मनोजय और मन को जीतने वाला सदा सुखी होता है ॥ १५ ॥

लोकोत्कटासना दीनां दुःखानां परिसोढनम् ।
सहिष्णुत्वेन सयुक्तं कायक्लेशतपोऽनघ ॥१६॥

भावार्थ – हे अनघ । लोच और उत्कट आसन आदि के दुःखों को सहिष्णुता पूर्वक सहन करना कायक्लेश तप कहलाता है ॥ १६ ॥

स्त्रीक्लीव पशुत्यक्ते श्रेष्ठानुष्ठानसंयुते-
सुस्थले वसन भद्र ! प्रतिसलीनता तपः ॥१७॥

भावार्थ – हे भद्र । स्त्री नपु सक और पशुओं से परित्यक्त, श्रेष्ठ अनुष्ठानयुक्त स्थान में निवास करना, प्रति सलीनता तप होता है ॥ १७ ॥

एते बाह्यतपोभेदाः परमानंद दायकाः ।
एषां सम्पादनेनैव लोके सिद्धि र्भवत्यरम् ॥१८॥

भावार्थ—हे मुनि ! परमानन्द दायक ये बाह्य तप के भेद कहे हैं। इनके सम्पादन से शीघ्र ही सिद्धि होती है ॥ १८ ॥

आभ्यन्तर तपः प्रोक्तुमारभे साम्प्रतं मुने ।
यथातेषां स्वरूपं स्यात्पवैवास्मायते शुभम् ॥१९॥

भावार्थ—हे मुनि ! अब मैं आभ्यन्तर तप का व्याख्यान प्रारम्भ करता हूं और उनके शुभ स्वरूप को भी कहता हूँ ॥ १९ ॥

प्रायश्चितं वनीतत्वं स्वाध्यायोध्यान मेवच ।
वैयावृत्यं समुत्सर्ग एतदन्तस्तयोऽन्नप ॥२ ॥

भावार्थ हे भव्य । प्रायश्चित विनय स्वाध्याय ध्यान वैयावृत्य और व्युत्सर्ग यह आभ्यन्तर तप है ॥ २ ॥

आलोचनादिना स्वस्मिन् त्रुटीनां दण्डयोजनम् ।
प्रायश्चितं तप श्रेष्ठं सर्व पापाप हारकम् ॥२१॥

भावार्थ—हे मुनि ! आलोचना आदि द्वारा अपनी त्रुटियों का दंड समझना प्रायश्चित तप होता है ॥ २१ ॥

कृत्वा निःशल्यभावेन स्वापराध प्रकाशनम् ।

यः प्रायश्चित माधत्ते स शुद्धो जायतेतराम् ॥२२॥

भावार्थ—हे मुनि । निश्छल भाव से, जो अपने अपराध का प्रकाशन करके उसका प्रायश्चित स्वीकार करता है, वह अत्यन्त शुद्ध होता है ॥२१॥

आचार्यादि विशिष्टाना शास्त्राभ्यासरतात्मनाम् ।

विनयो भक्तिभावेन विनीतत्वं तपो मुने ॥२३॥

भावार्थ हे मुनि । शास्त्राभ्यास में लगे हुए आचार्य आदि विशिष्ट पुरुषों के प्रति विनम्र भाव विनीतत्व तप होता है ॥२३॥

विनयात्परतरो मार्गो नैवास्त्यन्यो महीतले ।

येन कार्यस्य संसिद्धिः शीघ्रं भवति गौतम ॥२४॥

भावार्थ—हे गौतम । विनय से बढ़ कर संसार में और कोई मार्ग नहीं इससे कार्य की सिद्धि शीघ्र ही होती है ॥२४॥

वाचना पृच्छना भद्र ! तथा पर्यट्टना मता ।

अनुप्रेक्षा च धर्मोक्तिःस्वाध्यायोऽत्र पञ्चधा ॥२५॥

भावार्थ—हे भद्र । वाचना, पृच्छना, पर्यट्टना अनुप्रेक्षा और धर्मकथा ये स्वाध्याय तप के पाञ्च भेद हैं ॥२६॥

विशुद्धोच्चारणा-पूर्वं शास्त्राभ्यासः परंतप ।

वाचनेति प्रशस्तं तत् तपो लोकोपकारकम् ॥२६॥

भावार्थ— हे परंतप ! विशुद्धोच्चारण पूर्वक किया गया शास्त्राभ्यास ही लोकोपकारी वाचना तप है ॥२६॥

स्वस्य शङ्का समाधानं गुर्वादिभ्यः समन्वितं च ।

प्रश्नमानेकरूपाणां पृच्छनेति तपो मुने ॥२७॥

भावार्थ— हे मुनि ! गुरुआदि के चरणों में बैठकर अपनी शङ्काओं का समाधान कराना और अनेक प्रकार के प्रश्न करना पृच्छना तप कहलाता है ॥२७॥

आप्तप्रणीत शास्त्राणां तत्त्वानां ज्ञानिनां तथा ।

मुहुर्मुहुः समावृत्तिः पर्य्यटनेति तपो मुने ॥२८॥

भावार्थ— हे मुनि ! आप्त निरूपित शास्त्र और ज्ञानी पुरुषों के तत्त्वों की बार बार आवृत्ति करना पर्य्यटना तप कहलाता है ॥२८॥

आत्मनश्चिन्तनं वत्स ! ध्यानावस्थेन चेतसा ।

अनुप्रेक्षेति विज्ञेयं तपस्तद् द्वादशात्मकम् ॥२९॥

भावार्थ— हे वत्स ! ध्यानस्थ मन से आत्मचिन्तन करना अनुप्रेक्षा तप है । यह बारह प्रकार का होता है ॥२९॥

अनित्याशरणे भद्र ! सृष्ट्यै कत्वेऽन्य संशुची ।
आश्रवः सम्वरो धर्मो निर्जरा–लोक वोधिकाः ॥३०॥

भावार्थ— हे भद्र ! अनित्य अशरण, सृष्टि, एकत्व, अन्य शुचि, आश्रव, सम्वर, धर्म, निर्जरा, लोक, और वोधि ये वारह अनुप्रेक्षाओं के नाम हैं ॥ ३० ॥

उद्यम्य मुष्टिकां दुष्टां मृत्युः सन्तिष्ठते सदा ।
देहनाशं कदा कुर्यान्न जानेऽनित्य भावना ॥३१॥

भावार्थ—हे मुनि ! अपनी दुष्ट मुट्ठी को तान कर मृत्यु सदा तैयार बैठी रहती है। मुझे नहीं मालूम कि यह मेरे शरीर का कब नाश करदे ऐसा सोचना अनित्य भावना है ॥ ३१ ॥

रम्यं हर्म्यादिकं सर्वं मानुकूलं कुटुम्बकम् ।
त्यक्ष्यन्त्येवैकदा लोकाश्चक्षुः सम्मीलिते मुने ॥३२॥

भावार्थ—हे मुनि ! रम्य महल आदि, और अनुकूल कुटुम्ब आदि को, आंखें मिच जाने पर एक दिन अवश्य छोड़ना पड़ेगा ॥ ३२ ॥

येषां भ्रूभङ्ग मात्रेण कम्पते सकलाचला ।
तेऽपि नष्टगताः कस्त्वं कस्तेऽशरण मित्यदः ॥३३॥

भावार्थ—हे मुनि । जिनके भ्रूभङ्गमात्र से सारी पृथ्वी कम्पित हो जाती थी, वे भी मर गए, तो तेरी क्या बिसात है अर्थात तू किसका है और कौन तेरा है। यह अशरण भावना है ॥ ३३ ॥

अनादिकालतो जीवाभ्रमत्यत्र निरन्तरम् ।
नप्राप्नोति सुखं शान्तिं चिन्तयं सुप्तिभावना ॥२४॥

भावार्थ– हे मुनि ! अनादिकाल से यह जीव निरन्तर संसार में घूम रहा है अभी तक इसे सुख शान्ति की प्राप्ति नहीं हुई। ऐसा चिन्तन करना सुप्ति भावना है ॥ २४ ॥

एकाकी जायते जन्मी, एकाकी म्रियते तथा ।
एकः स्वकर्मणां भोगं स एव एकत्व भावना ॥२५॥

भावार्थ—हे मुनि ! यह आत्मा अकेला ही संसार में जन्म लेता है और अकेला ही मरता है। अपने कर्मों का फल भी अकेला ही भोगता है ऐसा सोचना एकत्व भावना है ॥ २५ ॥

पुत्र ज्ञाति धनादिभ्यो भिन्नोऽस्त्यात्मेति चिन्तनम् ।
कः शोकस्तद्विनाशात्ते भवत्यन्यत्व भावना ॥२६॥

भावार्थ हे मुनि ! पुत्र ज्ञाति धन इनसे आत्मा भिन्न है, फिर इनके नाश होने पर कैसा शोक ! ऐसा सोचना अन्यत्व भावना है ॥ २६ ॥

मांसमज्जाकफादीनां मलमूत्र प्रपूरितः ।
चर्मोपवष्टितो देहो भावने त्वशुचिर्मता ॥२७॥

भावार्थ – हे मुनि ! मांस मज्जा कफ और मल मूत्र से पूरित यह देह चमड़े से ढका हुआ गन्दगी का पात्र है। ऐसा विचार करना अशुचि भावना है ॥ २७ ॥

यथा बीजै स्तृणोत्पत्तिर्मृत्तिकाभिर्वटोद्भवः।
प्रवृत्त्या कर्म निष्पत्ति रित्येषाश्रव भावना ॥३८॥

भावार्थ - हे मुनि। जिस प्रकार बीजों से तृणों की उत्पत्ति होती है, मिट्टी से घडे की उत्पत्ति होती है, उसी प्रकार, प्रवृत्ति से कर्मों की निष्पत्ति होती है। इस भावना को आस्रव भावना कहते हैं ॥ ३८ ॥

आत्म जलाशये रम्ये आयान्तं पाप दुर्जलम् ।
यावरुणाद्धि यत्नेन सैव सम्वर भावना ॥३९॥

भावार्थ—हे मुनि। आत्म रूपी जलाशय में आते हुए पाप के गन्दे प्रवाह को जो रोकती है उसे सम्वर भावना कहते हैं ॥ ३९ ॥

संचितान् कर्म संघातानसंचयेद्या व्रतादिभिः।
सैव लोकोपकाराय निर्जरा भावना मुने ॥४०॥

भावार्थ—हे मुनि! इकट्ठे किये हुए कर्मसमूहों को जो व्रतादि के द्वारा नाश करे, उसे निर्जरा भावना कहते हैं ॥ ४० ॥

पापकूपे निमज्जन्तं धर्म एव हि रक्षति।
शुद्धेयं भावना वत्स, धर्म इत्यभिधीयते ॥४१॥

भावार्थ—हे वत्स। पाप के कुएँ में डूबते हुए की धर्म ही रक्षा करता है यह शुद्ध भावना धर्म कहलाती है ॥ ४१ ॥

नित्यश्च शाश्वतो लोकः स्वनाशित्वेन तिष्ठति ।

कर्ता मर्ता न काऽप्यस्य सौम्य यंलोक भावना ॥४ ॥

भावार्थ—हे मुनि ! यह लोक नित्य और शाश्वत है इसका मारा नहीं होता । इसका कर्ता मर्ता कोई नहीं यही लोक भावना है ॥ ४२ ॥

मानुषे भव आत्मान दुर्लभादपि दुर्लभम् ।

बोधिरत्नस्य सम्प्राप्तिः बोधिदुर्लभ भावना ॥४३॥

भावार्थ—हे मुनि ! मनुष्य जन्म में इस आत्मा का दुर्लभ से दुर्लभ जो बोधिरत्न (सद् ज्ञान) की प्राप्ति होती है वही बोधि दुर्लभ भावना है ॥ ४३ ॥

धर्मोपदेशा संशक्ति श्रेय सौख्य विवर्द्धिका ।

साधर्मोक्तिः समाख्याता सर्वसाधन साधिका ॥४४॥

भावार्थ—हे मुनि । धर्मोपदेश में अनुरक्ति, कल्याण और सुख के बढ़ाने वाली है वही सब साधनों के साधने वाली धर्मोक्ति भावना कही ग है ॥ ४४ ॥

दुर्ध्यानं परीक्ष य स्वा मनि धर्म धारणा ।

धवलाध्यवसायश्च तदसद्ध्यान मुच्यते ॥४५॥

भावार्थ—हे मुनि ! दुष्ट ध्यान को छोड़ कर आत्मा में धर्म की धारणा करना और शुक्ल अध्यवसाय रखना ही आवश्यक है ॥ ४५ ॥

आचार्यादि महापुंसां मरुजां दुःखितात्मनाम् ।
शुश्रूषा करणं वत्स' वैयावृत्यं तपोऽमलम् ॥४६॥

भावार्थ—हे वत्स । आचार्य आदि महापुरुष और दुखी रुग्णों की सेवा करना निर्मल वैयावृत्य तप कहलाता है ॥ ४६ ॥

त्याज्यं वस्तु सदा त्याज्यं ग्राह्यं ग्राह्यमेव च ।
इतिरूपात्मकं कार्यं व्युत्सर्ग तप उच्यते ॥४७॥

भावार्थ – हे मुनि । त्याज्य वस्तु छोड़नी चाहिये और ग्राह्य वस्तु लेनी चाहिये इस प्रकार का आचरण व्युत्सर्ग तप होता है ॥ ४७ ॥

पूर्वजन्मागतं कर्म नश्यत्येतत्तपस्यया ।
तथात्मापूर्णनैर्मल्यंलभते नात्र संशयः ॥४८॥

भावार्थ—हे मुनि । पूर्व जन्म से आए हुए कर्मों को यह तपस्या नष्ट कर देती है । और आत्मा पूर्ण निर्मल हो जाती है इसमें कोई सदेह नहीं है ॥ ४८ ॥

तपसा सर्व पापानि जीवानाँ संदहन्त्यरम् ।
यथा चडाग्नि कुक्षिस्थ तृणं यात्येव भस्मताम् ॥४९॥

भावार्थ—हे मुनि । तप से जीवों के सब पाप जल जाते हैं जिस प्रकार घास में रक्खा हुआ पतंगा घास के समूह को जला कर भस्म कर देता है ॥ ४९ ॥

ॐ शमिति श्रीमत्कविरत्न उपाध्याय अमृत मुनि विरचिताया श्रीमद् गौतम गीताया "तपो योगोनाम" अष्टमोऽध्याय ।

-: नवमोऽध्यायः :-

भगवानुवाच —

> शुभाशुभमात्मनो भाव लेश्येति सापि षड्विधा ।
> कृष्णा नीला च कापोता तैजसी पद्मशुक्लिका ॥१॥

भावार्थ — हे मुनि ! आत्मा के शुभ-अशुभ भावों को लेश्या कहते हैं। वह छः प्रकार की होती है-यथा कृष्णा, नीला, कापोती तैजसी, पद्म शुक्लिका ॥ १ ॥

पञ्चाश्रव समासक्तः कुटिलो मर्मभेदकः ।

महारम्भी महामायी कृष्णालेश्याभिधो जनः ॥२॥

भावार्थ—हे गौतम ? हिंसा, झूठ, चोरी मैथुन परिग्रह का सेवन करने वाला, कुटिल, मर्म भेदक, महारंभ करने वाला और महा मायावी पुरुष कृष्णालेश्या वाला होता है ॥ २ ॥

ईर्ष्यालुर्लोलुपोऽसभ्यः, दुष्ट कर्मांति निस्तपाः ।

पापलग्नोऽसद्ध्येतानीला लेश्याऽभिधो जनः ॥३॥

भावार्थ—हे मुनि ! ईर्ष्यालु, लालची, असभ्य, दुष्टकर्मा, तपरहित, पाप में लग्न और असत्य शास्त्रों का पाठक नील। लेश्याधारी पुरुष होता है ॥ ३ ॥

वक्रवक्ता दुरावृत्तः सक्रोधः पर निन्दकः ।

अगोप्ता स्वस्य दोषस्य कापोतोति युतोजनः ॥४॥

भावार्थ – हे मुनि ! टेढा बोलने वाला, दुर्व्यवसाय करने वाला, क्रोधी, पर निन्दक और अपने दोष को छिपाने वाला कापोती लेश्याधारी कहलाता है ॥ ४ ॥

विनीतोऽचपलः प्राज्ञः सुयोगस्सुतपाः सुधीः ।

सहिष्णुर्वासना जिष्णु स्तैजसीति युतो जनः ॥५॥

भावार्थ – हे भद्र । विनीत, चपल, बुद्धिमान् सुन्दर योगों वाला तपस्वी, विद्वान्, सहन शील और वासनाओं को जीतने वाला मनुष्य तैजसी लेश्या वाला होता है ॥ ५ ॥

अल्पकषायिकः शान्तो भव्य भावविभूषित ।
विरक्तो मुक्ति संसक्तः पद्मलेश्याभिधोजन ॥६॥

भावार्थ – हे गौतम ! अल्प कषाय वाला शान्त भव्य भावों से शोभित विरक्त और संयुक्त मनुष्य पद्मलेश्या वाला होता है ॥ ६ ॥

धर्मशुक्ल समध्यानी स्वाभिमानी सुसंयमी ।
रत्नत्रयानुरक्तश्च शुक्लेश्य संयुतो जन ॥७॥

भावार्थ – हे मुनि ! धर्म शुक्ल ध्यान धारी, स्वाभिमानी सुसंयमी, ज्ञान, दर्शन चारित्र में अनुरक्त शुक्लेश्या वाला पुरुष मनुष्य होता है ॥ ७ ॥

कृष्णा नीला च कापोती तिस्रो लेश्या विधार्मिका ।
यासुजीवोऽप्यमासक्तो दुर्गति याति गौतम ॥८॥

भावार्थ – हे गौतम ! कृष्णा नीला और कापोती ये तीनों अन्याय धर्म रहित है । इन में आसक्त जीव दुर्गति में जाता है ॥ ८ ॥

तिस्रोल या सुधार्मिक्य तेजसी पद्मशुक्लिके ।
यासु जीवाऽप्यमासक्तः सद्गति याति गौतम ॥९॥

भावार्थ – हे गौतम ! तेजसी पद्म और शुक्लिका ये तीन लेश्याएँ धार्मिक है । इन में अनुरक्त रहने वाला जीव सद्गति को प्राप्त होता है ॥ ९ ॥

यादृशो मानवो यः स्याल्लेश्या तस्यात्र तादृशी ।
उत्थाने पतने भद्र ! तस्याएवास्ति हेतुवा ॥१०॥

भावार्थ—हे भद्र ! जैसा मनुष्य होता है वैसी ही उसकी लेश्या होती है । मनुष्य के उत्थान और पतन मे वही (लेश्या) कारण होता है ॥ १० ॥

जीवनोद्धार कार्याय सल्लेश्या संश्रयं श्रयेत् ।
अन्यथो ज्ज्वलित ज्वाले जीवोऽयं पत्स्यते मुने ॥११॥

भावार्थ—हे मुनि । जीवन के उद्धार के लिये शुभ लेश्या का आसरा लेना चाहिये । अन्यथा यह जीवन नरक की ज्वाला मे गिरकर दुखी होगा ॥ ११ ॥

सल्लेश्या धारको लोकः परमात्मानं च संसृतौ ।
उद्धर्तु वा समुत्कर्तु समर्थो नात्र संशय ॥१२॥

भावार्थ—हे मुनि । शुभ लेश्याधारी मनुष्य संसार मे अपना और दूसरों का उद्धार कर सकता है । इस में कोई सन्देह नहीं ॥ १२ ॥

निजंपरं च यः शक्तः समुद्धर्तु महामुने ।
तस्यैवजीवनं लोके साफल्यं याति निश्चितम् ॥१३॥

भावार्थ—हे मुनि । जो अपना और दूसरों का उद्धार करने मे समर्थ होता है उसी का जीवन इस संसार में सफलता प्राप्त करता है ॥ १३ ॥

शुद्ध लेश्याश्रितो जीवः ईशो भवितु मर्हति ।
अतः शुद्धा सदा लेश्या संसेव्या देहधारिभिः ॥१४॥

भावार्थ—हे गौतम ! शुद्ध लश्या का धारी जीव परमेश्वर के पद को प्राप्त कर सकता है अतः समस्त देह धारियों को शुद्ध लश्या का सेवन करना चाहिये ॥ १४ ॥

शुभाशुभ प्रयोगेण लेश्यायाः प्राणिनो भुने !
क्रमेण देव दैत्यत्वं समन्ते तत्प्रभोदय ॥१५॥

भावार्थ—हे मुनि ! शुभ तथा अशुभ लश्या के संयोग से मनुष्य देव और दैत्य रूप को प्राप्त करता है ॥ १५ ॥

लेश्यानामवबोधाय दृष्टान्तोऽस्ते ह्युच्यते :—
येन लेश्या गतो भावो भावनामेति पूर्वतः ॥१६॥

भावार्थ—हे मुनि ! लेश्याओं के स्वरूप की जानकारी के लिये एक दृष्टान्त कहता हूं जिसके द्वारा लेश्याओं के भाव स्पष्टतया मालूम जाते हैं ॥ १६ ॥

षण्मित्रायथैकदा मद्र ! विमोक्तु क्वापि आम्रकम् ।
विपिने सग माश्रित्य गतानि वृक्ष सन्निधौ ॥१७॥

भावार्थ—हे भद्र ! एक बार छै मित्र जामुन खाने के लिये जंगल में जामुन के वृक्ष के समीप गए ॥ १७ ॥

एकेन मूलतश्छिन्नं स्कन्धतोऽन्येन गौतम ।
तृतीयेनादिशाखातः परेण फल गुच्छतः ॥१८॥

भावार्थ हे मुनि उन छै मित्रों में से एक ने जामुन के वृक्ष को मूल (जड़) से काटना प्रारम्भ किया, दूसरे ने स्कन्ध से तीसरे ने आदि शाखा से और चौथे ने फलों के गुच्छे सूतने प्रारम्भ किये ॥ १८ ॥

पञ्चमेन सुपक्वानि षष्ठेन पतितानि च ।
षड्लेश्याभेद विज्ञानं क्रमेणात्र कथानके ॥१६॥

भावार्थ—हे मुनि ! पांचवें ने पके पके तोड़ने प्रारम्भ किये और छठे ने भूमि पर पड़े हुए फल ग्रहण किए। इस कथा से छओं लेश्याधारी पुरुषों के भाव समझने चाहिए ॥ १६ ॥

दुष्टलेश्यापहाराय सतामाज्ञानुसारतः ।
सत्कार्यं सर्वदा कार्यं सुविचार्य सुखावहम् ॥२०॥

भावार्थ—हे मुनि। दुष्ट लेश्याओं के नाश के लिये साधु पुरुषों की आज्ञानुसार विचार पूर्वक शुभ कार्यों में सदा प्रवृत्ति करनी चाहिये ॥ २० ॥

यद्योनिराप्यते जीवैः पूर्वमन्तर्मुहूर्ततः ।
आयात्येवान्तिकं तेषां लेश्या शीघ्रं हितादृशी ॥२१॥

भावार्थ—हे गौतम ! जीव को जिस योनि में जाना होता है, मृत्यु से अन्तर्मुहूर्त पहिले उसकी, वैसी ही शुभ या अशभ लेश्या हो जाती है ॥ २१ ॥

महादिष्टेन मार्गेण गन्ता वा पल्लवारकः ।
कदाप्यारूढ़स्य नैव विघ्नहिंसादि जन्तुभिः ॥२२॥

भावार्थ—हे गौतम ! मेरे बताए हुए इस मार्ग पर चलने वाले को विघ्न रूपी क्रूर जीव हानि नहीं पहुँचा सकते ॥ २२ ॥

लेश्यानां च स्वरूपंयत् तन्मया भावितं समम् ।
अधुनैकाग्रचित्तेन ध्यानस्य शृणु गौतम ॥२३॥

भावार्थ हे गौतम। लेश्याओं का स्वरूप तो मैंने तुम्हें यथा विधि कर्ण गोचर करा दिया अब ध्यान पूर्वक ध्यान का स्वरूप श्रवण करो ॥ २३ ॥

मानसस्यात्मनोस्तत्त्वे, एकाग्रत्वेन योजनम् ।
ध्यानं तदेव विज्ञेयं, सदा सन्मार्गदायकम् ॥२४॥

भावार्थ—हे मुनि ! हृदय का एकाग्रभाव से आत्मा के तत्त्व में नियोजन ही मानसिक ध्यान कहलाता है ॥ २४ ॥

तद्ध्यानं द्विविधं भद्र ! शुभाशुभ प्रभेदतः ।
शुभे तत्त्वे शुभंध्यानं, तत्त्वेऽशुभेऽशुभं तथा ॥२५॥

भावार्थ हे भद्र ! शुभाशुभ भेद से ध्यान दो प्रकार का है। शुभतत्त्व में शुभ ध्यान होता है और अशुभतत्त्व में अशुभ होता है ॥ २५ ॥

अशुभस्य द्विभेदौस्तः, आर्त्त रौद्र हि गौतम ।
शुभस्यापि द्विनामानौ धर्म शुक्ल प्रभेदतः ॥२६॥

भावार्थ—हे गौतम । अशुभ ध्यान के दो भेद हैं आर्त्त और रौद्र । शुभ ध्यान के भी दो भेद हैं धर्म और शुक्ल ॥ २६ ॥

मोक्षार्थिभिःशुभंध्यान संसेव्यंहितलिप्सया ।
एनं विना न मसिद्धिः कदाप्यायातुमर्हति ॥२७॥

भावार्थ—हे मुनि । मोक्षार्थी जनों को हित इच्छा से सदा शुभ ध्यान का सेवन करना चाहिये । इसके विना सिद्धि प्राप्त नहीं होती ॥ २७ ॥

उद्यानंकदलीकुंजं पर्वतानां च कन्दरम् ।
द्वीपो रहःस्थलादीनि ध्यानस्थानानि गौतम ॥२८॥

भावार्थ—हे गौतम । बगीचा, कदलीवन, पहाड़ों की गुफाएं द्वीप और एकान्त स्थल आदि ध्यान करने के स्थान हैं ॥ २८ ॥

नासाग्रभागमालक्ष्य पूर्वस्मिन्, उत्तरेऽथवा ।
मुखं कृत्वा धरेत् ध्यानं शुद्ध मासनमास्थितः ॥२९॥

भावार्थ—हे मुनि । नाक के अग्र भाग पर दृष्टि जमा कर पूर्व अथवा उत्तर की ओर मुख करके, शुद्ध आसन पर ध्यान करे ॥ २९ ॥

अमीष्टानिष्टयोर्भद्र ! वियोगो योग एव च ।
कष्टाध्यानं निदानं वा, आर्तध्यानं चतुर्विधम् ॥२०॥

भावार्थ—हे भद्र ! इष्ट का वियोग अनिष्ट का संयोग कष्ट का आध्यान (चिन्ता) और निदान ये आर्त ध्यान के चार भेद हैं ॥ २० ॥

निजात्मोपाडनं शोको विलाप क्रन्दनं तथा ।
आर्त ध्यानस्य चोक्तानि लक्षणानि महामुने ॥२१॥

भावार्थ—हे महामुनि ! अपने आप को पीटना शोक करना विलाप करना, रोना ये आर्तध्यान के लक्षण हैं ॥ २१ ॥

हिंसानन्दो मृषानन्दः स्तेयानन्दस्तृतीयकः ।
परिग्रहानुनन्दश्च रौद्रध्यानं चतुर्विधम् ॥२२॥

भावार्थ—हे मुनि ! अहिंसा में आनन्दित होना झूठ में आनन्दित होना चोरी में आनन्दित होना और परिग्रह में आनन्दित होना ये रौद्रध्यान के चार भेद हैं ॥ २२ ॥

उत्सन्नो बहुलोदोष आज्ञानाऽमरणान्तिके ।
चतुर्दोषाधि रौद्रस्य लक्षणानि विचक्षण ॥२३॥

भावार्थ—हे विचक्षण ! उत्सन्न—हिंसादि कृत्य करना बहुल बार २ कुढपने से हिंसादि कृत्य करना अज्ञान—हिंसा में धर्म बताना आमरणान्तिक—आयु पर्यन्त पाप करना ये रौद्र ध्यान के चार लक्षण हैं ॥ २३ ॥

आज्ञाऽपायो विपाकश्च संस्थान विचयस्तथा ।
धर्मध्यानस्य रूपाणि, चतुः संख्यानि गौतम ॥३४॥

भावार्थ—हे गौतम ! आज्ञा, अपाय, विपाक और संस्थान विचय ये धर्म ध्यान के चार भेद हैं ॥ ३४ ॥

वीतरागोपदेशानां शक्तितः परिपालनम् ।
तथा तेषु दृढ़ाश्रद्धा, आज्ञेति मुनिपुंगव ॥३५॥

भावार्थ – हे मुनि श्रेष्ठ ! वीतराग भगवान के उपदेशों का शक्ति पूर्वक पालन करना और उनमें दृढ़ श्रद्धा रखना आज्ञा विचय धर्मध्यान कहलाता है ॥ ३५ ॥

चतुर्गतिषु जीवोऽयं रागद्वेषादिभिः सदा ।
दुःखमेतीति विज्ञान मपायविचयो मुने ॥३६॥

भावार्थ – हे मुनि ! यह जीव चारों गतियों में, राग द्वेष आदि से दुःख पाता है । ऐसी चिन्तना को अपाय विचय कहते हैं ॥ ३६ ॥

पूर्व जन्मार्जितै कृत्यैःसुख दुःखं च जायते ।
इति सञ्चितना भद्र ! विपाक विचयो मतः ॥३७॥

भावार्थ—हे भद्र ! पूर्व में किए शुभाशुभ कर्मों से सुख दुःख मिलता है ऐसा सोचना विपाक विचय कहलाता है ॥ ३७ ॥

सर्व लोक स्वरूपस्य शास्त्रोक्तस्य महामुने ।

विचार' सुविवेकेन संस्थान विषयो मतः ॥३८॥

भावार्थ—हे महामुनि ! सम्पूर्ण लोक के शास्त्रोक्त स्वरूप का विवेक पूर्वक चिंतन करना संस्थान विचय नाम कहलाता है।

सर्वज्ञाज्ञा निसर्गश्च, स्वपदेशः सदागमः ।

रुचयश्चैषु सर्वेषु धर्मध्यानस्य लक्षणम् ।३६॥

भावार्थ—हे मुने ! सर्वज्ञ आज्ञा में रुचि निसर्ग रुचि उपदेश रुचि आगम रुचि ये धर्मध्यान के लक्षण हैं ॥ ३६ ॥

पार्थक्यंतत एकत्वं सूक्ष्मक्रियाऽनिवर्त्तना ।

अप्रतिपातिकं चैव शुक्लध्यानं चतुर्विधम् ॥४०॥

भावार्थ—हे मुनि ! पार्थक्य एकत्व सूक्ष्मक्रिया अनिवर्त्त ना और अप्रतिपातिक ये चार शुक्लध्यान के भेद हैं ॥ ४० ॥

युक्तिन्याय समायुक्तं पार्थक्येन विचिन्तनम् ।

द्रव्यस्यैकस्य महाबुद्धे पार्थक्यं ध्यान मुच्यते ॥४१॥

भावार्थ—हे महाबुद्धि ! युक्ति और न्याय से युक्त एक द्रव्य का पृथक् भाव से चिन्तन करना पार्थक्य शुक्लध्यान कहलाता है ॥ ४१ ॥

सत्यनीति समायुक्त मेकान्तत्वेन चिन्तनम् ।

द्रव्यस्यैकस्य सद्बुद्धे ! एकत्वं ध्यानमुच्यते ॥४२॥

भावार्थ – हे सद्बुद्धे ! एक द्रव्य का, सत्य और नीति-पूर्वक एकान्त भाव से चिन्तन एकत्व शुक्लध्यान कहलाता है ॥ ४२ ॥

क्रियायाः सूक्ष्म मस्तित्वं, ईर्यायाः पथिकान्वितम् ।

सयोगिभाव संभूतं सूक्ष्मक्रियेति गौतम ॥४३॥

भावार्थ – हे गौतम ! सहयोग भाव होने से ईर्या पथिका क्रिया का सूक्ष्म अस्तित्व ही सूक्ष्म क्रियानामक शुक्लध्यान कहलाता है ॥ ४३ ॥

सर्वयोग विनिर्मुक्तिः क्रियाराहित्यमेव च ।

परमोत्कृष्टपदं यत्र–अप्रतिपातिकं मुने ॥४४॥

भावार्थ हे मुनि ! जिस परम उत्कृष्ट पद मे सब योगों की मुक्ति, और क्रिया का अभाव हो वह अप्रतिपातिक शुक्लध्यान होता है ॥ ४४ ॥

अवस्थितिरसंमोहो व्युत्सर्गः सविवेकता ।

शुक्लध्यानस्य शुद्धस्य, लक्षणानीति सन्मते ॥४५॥

भावार्थ – हे सन्मति ! अवस्थिति, असम्मोह, व्युत्सर्ग, विवेकता, ये शुक्लध्यान के चार लक्षण हैं ॥ ४५ ॥

अथातो ध्येय मध्यस्थं पिण्डस्थं प्रथमं ततः ।
पदस्थं चैव रूपस्थं रूपातीतं महामुने ॥४६॥

भावार्थ — हे महामुनि ! अब यहां से पिण्डस्थ पदस्थ रूपस्थ और रूपातीत इन चार ध्येयों का अध्ययन करो ॥ ४६ ॥

पार्थिवादिविभागेन स्वात्मनः परिचिन्तनम् ।
पिण्डस्थं नामकं ध्येयं द्रव्य जीवैकताऽहितम् ॥४७॥

भावार्थ — हे मुनि ! पृथ्वी आदि विभाग से आत्मा का चिन्तन और द्रव्य जीव की एकता का मनन करना पिण्डस्थ ध्येय कहलाता है ॥ ४७ ॥

चित्ते चतुर्विंशत्यं नाभौ षोडश पंक्तिकम् ।
मुखे चाष्टदलं कृत्वा ध्यानं सादरं माचरेत् ॥४८॥

भावार्थ — हे मुनि ! हृदय में २४ दल नाभि में १६ और मुख में ८ दलों की कल्पना करके सादर पदस्थ ध्यान करना चाहिए ॥ ४८ ॥

महामन्त्रस्य भावार्थं यद्वा मनसि चिन्तयेत् ।
पदस्थमित्यवत् ध्येयं सद्ध्यानिभि मुने ॥४९॥

भावार्थ — हे मुनि ! अथवा महामन्त्र के भावार्थ का मन में चिन्तन करना पदस्थ ध्येय कहलाता है । जो सद्ध्यानियों को सदा आचरण करना चाहिए ॥ ४९ ॥

रूपेऽरूपी ममाऽत्माऽयं अर्हत्स्वरूप धारकः ।
चिन्तनेति विवेकेन रूपस्थं ध्येय मुच्यते ॥५०॥

भावार्थ—हे मुनि। यह मेरी अर्हत स्वरूपधारी आत्मा रूप मे अरूपी है ऐसा सविवेक चिन्तन करना रूपस्थ ध्यान कहलाता है ॥ ५० ॥

आत्मपरमात्मनो रैक्यं चिन्तयेदधिमानसम् ।
स्वय सिद्धोऽहमित्येतद्रूपातीतं मुने ! मतम् ॥५१॥

भावार्थ—हे मुनि ! आत्मा और परमात्मा की एकता का चिन्तन करता हुआ, "मैं स्वय सिद्ध हू" इत्याकारक चिन्तन रूपातीत ध्येय कहलाता है ॥ ५१ ॥

शुद्धस्वान्तं विना ध्यातुर्ध्यान सिद्धिर्न जायते ।
अतो ध्यात्रा विधातव्या स्वात्मशुद्धिःविशेषतः ॥५२॥

भावार्थ—हे मुनि। शुद्ध हृदय के विना ध्यानी के ध्यान की सिद्धि नहीं होती। अत उसको विशेष प्रकार से आत्मशुद्धि करनी चाहिये ॥ ५२ ॥

ध्याता, ध्यानं तथा ध्येयं त्रयाणां यत्र संगमः ।
तत्र कल्याण संसिद्धि र्जायते नात्र संशयः ॥५३॥

भावार्थ—हे मुनि। ध्याता, ध्यान और ध्येय इन तीनों का जहा समागम होता है वहीं, कल्याण की सिद्धि होती है। इस में कोई सन्देह नहीं है।। ५३ ॥

यथार्थध्यान मार्गेण यातास्मात्र्यं हि गौतम ।
प्राप्यते मुक्तिसंस्थानं यतो नैवाभिवर्त्तते ॥५४॥

भावार्थ—हे गौतम । यथार्थ ध्यान मार्ग से चलने वाला यह आत्मा मुक्ति स्थान को प्राप्त करता है जहाँ से फिर इसकी पुनरावृत्ति नहीं होती ॥ ५४ ॥

ध्यानस्य शुद्ध सैवासो जीवात्मात्र्यं निरूपितः ।
तत्रैवध्यान गम्यत्वं नैव बाह्य पदास्थितिः ॥५५॥

भावार्थ—हे मुनि । ध्यान का शुद्ध आवास यह जीवात्मा ही है। ध्यान वहीं पर गम्य है। बाह्य पदार्थों में ध्यान की स्थिति नहीं है ॥ ५५ ॥

उत्तितीर्षु मनुष्याणां अस्मिन्संसार सागरे ।
रक्षकं पापजन्तुभ्यो नौरूपं ध्यान मस्ति च ॥५६॥

भावार्थ हे गौतम ! तरने की इच्छा वाले मनुष्यों के लिये इस संसार सागर में पाप जीवों से रक्षा करने वाला केवल ध्यान ही नाव का रूप है ॥ ५६ ॥

इति श्री सत्कविरत्न उपाध्याय अमृतमुनि विरचितायां श्रीमद्गौतमगीतायां "शिष्यध्यान यत्नानाम" नवमोऽध्यायः ।

❀)—○—(❀

-: दशमोऽध्याय :-

भगवानुवाच —

विचाराहि मनुष्याणां प्रतिमानाः परंतपः ।

विचारो यादृशो यस्य मर्त्यो भवति तादृशः ॥१॥

भावार्थ हे परंतप । विचार ही मनुष्य के प्रतिनिधि होते है। अत जैसे विचार होते है वैसा ही मनुष्य होता है ॥ १ ॥

विचारैः कर्मणां बन्धो विचारैस्तद्विमोचनम् ।
अतः सर्वेषु कार्येषु विचारोऽस्त्यग्रिमो मतः ॥२॥

भावार्थ—हे मुनि ! विचारों से ही कर्मों का बन्ध होता है और विचारों से मुक्ति, अतः सर्व कार्यों में विचार ही प्रधान है ॥ २ ॥

विचारा हि द्विधा भद्र ! सर्वस्याहितहितावहा ।
सावद्यानिरवद्याख्य पारिभाष्य तयोः शृणु ॥३॥

भावार्थ—हे भद्र ! सबके लिये अहित कारक और हितकारक विचार सावद्य और निरवद्य भेद से दो प्रकार के होते हैं । इन दोनों के भेदों को सुनो ॥ ३ ॥

अशुभचिन्तनं यस्य प्राणिनः कस्यचित्कृते ।
तत्सावद्यमिति प्रोक्तं तेन पातोऽभिजायते ॥४॥

भावार्थ—हे भद्र ! किसी भी प्राणी के लिये अशुभ चिन्तन करना सावद्य विचार कहलाता है । इसी से मानव का पतन होता है ॥ ४ ॥

पुण्यः पवित्र उत्कृष्टश्चिन्त्यमानः कस्य चित्कृते ।
निरवद्योऽहि सद्बुद्धे ! उत्तरोत्तर शंकर ॥५॥

भावार्थ—हे सद्बुद्धि ! पुण्य पवित्र और उत्कृष्ट विचार ही उत्तरोत्तर कल्याणकारी निरवद्य विचार हैं ॥ ५ ॥

आहारोहि विचाराणां विनिर्माता तपोधन ।
यथाऽहारस्तथैव स्यान्मनोभावः शुभोऽशुभः ॥६॥

भावार्थ—हे तपोधन । आहार ही, विचारों का निर्माता है । जैसा आहार होता है, वैसा ही शुभाशुभ मनोभाव हो जाता है ॥ ६ ॥

विकारोत्पादकाहार आसेव्यःसोऽशुभः सदा ।
आहारः सात्त्विक स्तस्मात्संसेव्योऽत्र विवेकिभिः ॥७॥

भावार्थ—हे मुनि । विकार उत्पन्न करने वाला आहार, असेव्य और अशुभ है । अत विवेकी पुरुषों को सात्त्विक आहार का सेवन करना चाहिये ॥ ७ ॥

यथा पवित्र भोज्येन वपुः पुष्यति भौतिकम् ।
तथा शुद्ध विचारैस्तु चेतते शक्ति रात्मनः ॥८॥

भावार्थ—हे मुने । जिस प्रकार, शुद्ध भोजन से भौतिक शरीर पुष्ट होता है, उसी प्रकार शुद्ध विचारों से आत्मा की शक्ति चैतन्य होती है ॥ ८ ॥

वस्त्र पूतं जलं नित्यं विवेकेन पिबन्ति ये ।
तेषां स्वास्थ्यस्य धर्मस्य वृद्धिर्भवति गौतम ॥९॥

भावार्थ—हे मुनि । छने हुए जल को जो विवेक पूर्वक पीते हैं, उनके स्वास्थ्य और धर्म की वृद्धि होती है ॥ ९ ॥

विचारैः कर्मणां बन्धो विचारैस्तद्विमोचनम् ।
अतः सर्वेषु कार्येषु विचारोऽग्रिमो मतः ॥२॥

भावार्थ—हे मुनि ! विचारों से ही कर्म का बन्ध होता है और विचारों से मुक्ति अतः सर्व कार्यों में विचार ही प्रधान है ॥ २ ॥

विचाराः द्विविधा भद्र ! सर्वस्याहितहितावहाः ।
सावद्यानिरवद्याख्य पारिभाष्य तयो शृणु ॥३॥

भावार्थ—हे भद्र ! सबके लिये अहित कारक और हितकारक विचार, सावद्य और निरवद्य भेद से दो प्रकार के होते हैं । इन दोनों के भेदों को सुनो ॥ ३ ॥

अशुभचिन्तनं यस्य प्राणिनः कस्यचित्कृते ।
तत्सावद्यमिति प्रोक्तं तेन पातोऽभिजायते ॥४॥

भावार्थ—हे भद्र ! किसी भी प्राणी के लिये अशुभ चिन्तन करना सावद्य विचार कहलाता है । इसी से मानव का पतन होता है ॥ ४ ॥

पुण्यः पवित्र उत्कृष्टो विचारः कस्यचित्कृते ।
निरवद्योऽस्ति सद्बुद्धे ! उत्तरोत्तर शंकरः ॥५॥

भावार्थ – हे सद्बुद्धि ! पुण्य पवित्र और उत्कृष्ट विचार ही उत्तरोत्तर कल्याणकारी निरवद्य विचार है ॥ ५ ॥

अस्वरूपोऽयमात्माऽस्ति नैन्द्रियै गृ ह्यते क्वचित् ।
मिथ्यात्वकारणैः सोऽयं वन्धनैःपीड्यतेतराम् ॥१४॥

भावार्थ हे मुनि । यह आत्मा स्वरूप रहित है । अतः इन्द्रियो से गृहीत नहीं है । परन्तु मिथ्यात्व कारण से यह वन्धनों में पड़कर दु ख पा रही है ॥ १४ ॥

कल्पवृक्षोऽयमात्मैव कामधेनुश्च सर्वदा ।
नन्दनं वन मप्येष भीमा वैतरणी नदी ॥१५॥

भावार्थ हे मुनि । यह आत्मा ही कल्पवृक्ष, कामधेनु, नन्दन वन और वैतरणी नदी है ॥ १५ ॥

सुख दुःख प्रसू रात्मा शत्रुर्मित्रंच गौतम ।
भद्राभद्र विनिर्माता त्राता, धाता परं पिता ॥१६॥

भावार्थ हे गौतम । सुख दुख की जननी, शत्रु और मि, भद्र, अभद्र का निर्माता, त्राता, धाता और परमपिता यह आत्मा ही है ॥१६ ॥

येन वुद्धः स्वरूपेण सम्यगात्मा महामुने ।
शरीरेणात्र तिष्ठनूस मोक्षेऽस्त्येव सदाऽत्मना ॥१७॥

भावार्थ—हे महामुनि । जिसने सम्यक् स्वरूप से आत्मा को जान लिया है । वह शरीर से यहा रहता हुआ भी आत्मा से मोक्ष में वसता है ॥ १७ ॥

पापपङ्कोऽस्ति यस्यात्मा बन्दीभूतः स्वकर्मभिः ।
प्रस्तूयते स सद्बुद्धे ! दण्डकार्थे सर्वयोनिषु ॥१०॥

भावार्थ – हे सद्बुद्धि ! जिस की आत्मा पाप पङ्क और कर्मों से बन्दीभूत है वह दण्डक के लिए सब योनियों में प्रस्तुत किया जाता है ॥ १० ॥

यत्रापि दण्ड्यते जीवः पीड्यते विविधाधिभिः ।
चतुरशीतिलक्षाणां योनयो 'दण्डकं' मुने ॥११॥

भावार्थ – हे मुनि ! जहाँ वह जीवात्मा नाना प्रकार की आधि व्याधियों से दण्डित और पीड़ित होता है वह चौरासी लाख जीव योनि का समूह "दण्डक" कहलाता है ।। ११ ॥

दण्डकाद्योऽभिसेन्मुक्तिं कुर्यान्ममोक्तिपालनम् ।
नास्त्यन्यः शुभोपायः मे श्रेष्ठोऽस्मादि महामुने ॥१२॥

भावार्थ – हे महामुनि ! जो मनुष्य दण्डक से छुटकारा पाना चाहे वह मेरी आज्ञा का पालन करे । इससे बढ़कर अन्य कोई शुभ उपाय नहीं है ॥ १२ ॥

आत्मशुद्धेरुपायोयं उक्तो शुभतमो मुने ।
प्रचारयेरिमं लोके परमार्थोऽयं परं वरः ॥१३॥

भावार्थ – हे मुनि ! आत्म शुद्धि का जो शुभतम उपाय मैंने तुमसे कहा है, इसे समस्त संसार में प्रचारित करो । यही सर्वश्रेष्ठ परमार्थ है ॥१३॥

लक्ष्यस्यैवानुसारेण लक्षणं सम्प्रवर्त्तते ।
इत्येव जडलक्ष्यत्वे जनेष्वायाति जाड्यता ॥२२॥

भावार्थ—हे मुनि । लक्ष्य के अनुसार ही लक्षण प्रवृत्त होता है, इस लिये जडत्त्व को लक्ष्य बनाने से मनुष्यों में जड़ता अवश्य आ जाती है ॥ २२ ॥

जडतत्त्वेन च संसिद्धि मात्मनो येऽभ्युपासते ।
अन्धकारावृता लोका स्तेऽज्ञानान्धुनिपातिनः ॥२३॥

भावार्थ— हे मुनि । जो मनुष्य जड़तत्त्व के द्वारा आत्म-सिद्धि चाहते हैं, वे अन्धकार से अन्धे होकर अज्ञान रूप कूप में गिरते हैं ॥ २३ ॥

चेतनेष्वेव चैतन्यं जडे जाड्यं प्रसीदति ।
प्रकृति न्याय इत्येष सूचयत्येव सर्वथा ॥२४॥

भावार्थ—हे मुनि । चेतन में चैतन्य और जड में जड़ता प्रसन्न होती है । प्रकृतिका न्याय इस बात की सूचना देता है ॥२४॥

अमूर्त्ते मूर्त तत्त्वस्य कल्पना जल्पनोपमा ।
तस्मादमूर्त्तमात्मानं चिन्तयेदात्ममन्दिरे ॥२५॥

भावार्थ—हे मुनि । अमूर्त्त तत्त्व में मूर्त्त की कल्पना करना व्यर्थ है। इस लिये आत्म-मन्दिर मे आत्म-देव की चिन्तना करनी चाहिये ॥ २५ ॥

संगरे कोटिं योधानां संजतानिव सञ्जयी ।
किन्तु जेता स एवात्र यमात्मानं जयेत्स्वतः ॥१८॥

भावार्थ—हे मुनि ! संग्राम में करोड़ों योधाओं को जीतने वाला विजयी नहीं बल्कि स्वयं अपनी आत्मा को जीतने वाला सच्चा विजयी है ॥ १८ ॥

योधव्यं स्वात्मना नित्यं किमन्यैर्युद्धकर्मभिः ।
जिते सत्यात्मतत्त्वेऽस्मिञ्जितं सर्वं जगन्मुने ॥१९॥

भावार्थ—हे मुनि ! अपनी आत्मा के साथ ही युद्ध करना चाहिये । दूसरों के साथ व्यर्थ युद्ध करने से क्या ? आत्मा के जीतने पर सारा जगत विजित हो जाता है ॥ १९ ॥

सदालम्ब्य सदात्माय मात्मतत्त्वोपसेविभिः ।
आत्मन्युपासिते विद्वन् कृतं सर्वस्य पूजनम् ॥२०॥

भावार्थ—हे विद्वान ! आत्मतत्त्व के उपासकों का यह आत्मा सदा आलम्बन स्वरूप है । आत्मा की उपासना करने पर सभी की उपासना हो जाती है ॥ २० ॥

सम्बन्धात्जडतत्त्वानामात्मायं पीड्यते मुने ।
भयमूलं जगत्दुःखं तेषां वत्स ! विमोचनम् ॥२१॥

भावार्थ—हे वत्स ! जड़ तत्त्वों के सम्बन्ध से आत्मा दुःख पाती है । अतः जड़ तत्त्वों का त्याग ही कल्याण का मूल और संसार सागर का किनारा है ॥ २१ ॥

लक्ष्यस्यैवानुसारेण लक्षणं सम्प्रवर्त्तते ।
इत्येव जडलक्ष्यत्वे जनेष्वायाति जाड्यता ॥२२॥

भावार्थ—हे मुनि । लक्ष्य के अनुसार ही लक्षण प्रवृत्त होता है, इस लिये जड़त्व को लक्ष्य बनाने से मनुष्यों मे जड़ता अवश्य आ जाती है ॥ २२ ॥

जडतत्त्वेन च संसिद्धि मात्मनो येऽभ्युपासते ।
अन्धकारावृता लोका स्तेऽज्ञानान्धुनिपातिनः ॥२३॥

भावार्थ— हे मुनि । जो मनुष्य जड़तत्त्व के द्वारा आत्म-सिद्धि चाहते हैं, वे अन्धकार से अन्धे होकर अज्ञान रूप कूप मे गिरते हैं ॥ २३ ॥

चेतनेष्वेव चैतन्यं जडे जाड्यं प्रसीदति ।
प्रकृति न्याय इत्येष सूचयत्येव सर्वथा ॥२४॥

भावार्थ—हे मुनि । चेतन में चैतन्य और जड मे जड़ता प्रसन्न होती है । प्रकृतिका न्याय इस बात की सूचना देता है ॥२४॥

अमूर्त्ते मूर्त तत्त्वस्य कल्पना जल्पनोपमा ।
तस्मादमूर्त्तमात्मानं चिन्तयेदात्ममन्दिरे ॥२५॥

भावार्थ—हे मुनि । अमूर्त्त तत्त्व में मूर्त्त की कल्पना करना व्यर्थ है । इस लिये आत्म-मन्दिर मे आत्म-देव की चिन्तना करनी चाहिये ॥ २५ ॥

शरीरंनुष्य जन्माऽय मात्मा चैवास्ति नाविकः ।

नौकामदस्तो मनोमद्र ! संसारःसागरोपम ॥२६॥

भावार्थ—हे भद्र ! मनुष्य-जन्म नाव के समान है आत्मा नाविक है, मन चप्पू है और यह संसार समुद्र के समान है ॥२६॥

नानाऽडम्बरं केचित् सेवन्ते हतबुद्धयः ।

किन्तु ते जन्मनैष्फल्यं कुर्वतेनात्र संशय ॥२७॥

भावार्थ—हे भद्र ! कितने ही हित बुद्धि लोग अनेक आडम्बरों का सेवन करते हैं। किन्तु ऐसा करके वे जन्म को व्यर्थ खोते हैं ॥ २७ ॥

'आत्मैव परमात्माऽयं"सिद्धान्तोऽयं महामुने ।

एतमित्यानुसारेण वर्तनीयं जनैः सदा ॥२८॥

भावार्थ—हे मुनि ! आत्मा ही परमात्मा हाती है यही सिद्धांत अटल है। इसके अनुसार सभी को चलना चाहिये ॥ २८ ॥

गौतम उवाच —

दीर्घकायो गजो देव ! पुत्रकाया पिपीलिका ।

देहानुमानमानेन किमात्मन्यपि बाध्यता ॥ २९॥

भावार्थ—हे देव ! हाथी का शरीर बड़ा और कीड़ी का शरीर छोटा होता है। तो क्या देह के अनुमान के माप से आत्मा पर भी इसका प्रभाव पड़ता है ॥ २९ ॥

अस्वरूपोऽयमात्माऽस्ति नैन्द्रियै गृ ह्यते क्वचित् ।
मिथ्यात्वकारणैः सोऽयं बन्धनैःपीड्यतेतराम् ॥१४॥

भावार्थ हे मुनि । यह आत्मा स्वरूप रहित है । अत इन्द्रियों से गृहीत नहीं है । परन्तु मिथ्यात्व कारण से यह बन्धनों में पडकर दु ख पा रही है ॥ १४ ॥

कल्पवृक्षोऽयमात्मैव कामधेनुश्च सर्वदा ।
नन्दन वन मप्येष भीमा वैतरणी नदी ॥१५॥

भावार्थ हे मुनि । यह आत्मा ही कल्पवृक्ष, कामधेनु, नन्दन वन और वैतरणी नदी है ॥ १५ ॥

सुख दुःख प्रसू रात्मा शत्रुर्मित्रंच गौतम ।
भद्राभद्र विनिर्माता त्राता, धाता परं पिता ॥१६॥

भावार्थ हे गौतम । सुख दुख की जननी, शत्रु और मि, भद्र, अभद्र का निर्माता, त्राता, धाता और परमपिता यह आत्मा ही है ॥१६ ॥

येन बुद्धः स्वरूपेण सम्यगात्मा महामुने ।
शरीरेणात्र तिष्ठन्स मोक्षेऽस्त्येव सदाऽत्मना ॥१७॥

भावार्थ—हे महामुनि । जिसने सम्यक् स्वरूप से आत्मा को जान लिया है । वह शरीर से यहा रहता हुआ भी आत्मा से मोक्ष में बसता है ॥ १७ ॥

सगर कोटि योधानां संजतानैव सम्मयी ।
किन्तु जेता स एवात्र यआत्मानं जयेत्स्वतः ॥१८॥

भावार्थ—हे मुनि ! संग्राम में करोड़ों योधाओं को जीतने वाला विजयी नहीं बल्कि स्वयं अपनी आत्मा को जीतने वाला सच्चा विजयी है ॥ १८ ॥

योधव्य स्वात्मना नित्य किमन्यैर्व्यर्थविक्रमैं ।
जिते सत्यात्मतत्त्वेऽस्मिंजितं सर्वजगन्मुने ॥१९॥

भावार्थ—हे मुनि ! अपनी आत्मा के साथ ही युद्ध करना चाहिये। दूसरों के साथ व्यर्थ युद्ध करने से क्या ? आत्मा के जीतने पर सारा जगत विजित हो जाता है ॥ १९ ॥

सदात्मस्य सदात्माय मात्मतत्त्वोपसेविभि ।
आत्मन्युपासिते विद्वन कृतं सर्वस्य पूजनम् ॥२०॥

भावार्थ—हे विद्वान ! आत्मतत्त्व के उपासकों को यह आत्मा सदा आलम्बन स्वरूप है। आत्मा की उपासना करने पर सभी की उपासना हो जाती है ॥ २० ॥

सम्बन्धान्यद्रतत्त्वानामात्मार्थं पीड्यते मुने ।
भ यामूलं जगत्कृत्स्न तपां वत्सा ! विमोचनम् ॥२१॥

भावार्थ—हे वत्स ! जड़ तत्त्वों के सम्बन्ध से आत्मा दुःख पाती है। अतः जड़ तत्त्वों का त्याग ही कल्याण का मूल और संसार सागर का किनारा है ॥ २१ ॥

लक्ष्यस्यैवानुसारेण लक्षणं सम्प्रवर्त्तते ।
इत्येवं जडलक्ष्यत्वे जनेष्वायाति जाड्यता ॥२२॥

भावार्थ—हे मुनि । लक्ष्य के अनुसार ही लक्षण प्रवृत्त होता है, इस लिये जड़त्व को लक्ष्य बनाने से मनुष्यों में जड़ता अवश्य आ जाती है ॥ २२ ॥

जडतत्त्वेन च संसिद्धि मात्मनो येऽभ्युपासते ।
अन्धकारावृता लोका स्तेऽज्ञानान्धुनिपातिनः ॥२३॥

भावार्थ— हे मुनि । जो मनुष्य जडतत्त्व के द्वारा आत्म-सिद्धि चाहते हैं, वे अन्धकार से अन्धे होकर अज्ञान रूप कूप में गिरते हैं ॥ २३ ॥

चेतनेष्वेव चैतन्यं जडे जाड्यं प्रसीदति ।
प्रकृति न्याय इत्येष सूचयत्येव सर्वथा ॥२४॥

भावार्थ—हे मुनि । चेतन में चैतन्य और जड में जड़ता प्रसन्न होती है । प्रकृति का न्याय इस बात की सूचना देता है ॥२४॥

अमूर्त्ते मूर्त तत्त्वस्य कल्पना जल्पनोपमा ।
तस्मादमूर्त्तमात्मानं चिन्तयेदात्ममन्दिरे ॥२५॥

भावार्थ—हे मुनि । अमूर्त्त तत्त्व में मूर्त्त की कल्पना करना व्यर्थ है । इस लिये आत्म-मन्दिर में आत्म-देव की चिन्तना करनी चाहिये ॥ २५ ॥

तरिर्मनुष्य जन्माऽय आत्मा चैवास्ति नाविकः ।

नौकास्वरूपो मनोभद्र ! संसारः सागरोपमः ॥२६॥

भावार्थ—हे भद्र ! मनुष्य-जन्म नाव के समान है आत्मा नाविक है, मन चप्पू है और यह संसार समुद्र के समान है ॥२६॥

नानाऽऽडम्बरं केचित् सेवन्ते हतबुद्धयः ।

किन्तु ते जन्मनैष्फल्यं कुर्वते नात्र संशयः ॥२७॥

भावार्थ—हे भद्र ! कितने ही हत बुद्धि लोग अनेक आडम्बरों का सेवन करते हैं। किन्तु ऐसा करके वे जन्म को व्यर्थ खोते हैं ॥ २७ ॥

' आत्मैव परमात्माऽयं"सिद्धान्तोऽयं महामुने ।

एतस्यानुसारेण वर्तनीयं जनैः सदा ॥२८॥

भावार्थ—हे मुनि ! आत्मा ही परमात्मा होती है यही सिद्धान्त अटल है। इसके अनुसार सभी को चलना चाहिये ॥ २८ ॥

गौतम उवाच —

दीर्घकायो गजो देव ! क्षुद्रकाया पिपीलिका ।

देहानुमानमानेन किमात्मन्यपि वाच्यता ॥ २९॥

भावार्थ—हे देव ! हाथी का शरीर बड़ा और कीड़ी का शरीर छोटा होता है। तो क्या देह के अनुमान के माप से आत्मा पर भी इसका प्रभाव पड़ता है ॥ २९ ॥

भगवानुवाच —

नक्षुद्रो न महानात्मा, न दीर्घो ह्रस्वएवच ।
समः सर्वेषु भूतेषु, आत्मतत्त्व स्थिति मुने ॥३०॥

भावार्थ—हे मुनि ! न आत्मा छोटा है और न ही बड़ा है। न दीर्घ है और न ओछा है। यह आत्मा तो सम्पूर्ण प्राणियों में सम है ॥ ३० ॥

सङ्कीर्णे विस्तृते वापिसमादीप स्थितिर्मुने ।
आवृता वा स्वतन्त्रा वा समाना तस्य सा शिखा ॥३१॥

भावार्थ—हे मुनि ! सङ्कीर्ण अथवा विस्तृत दोनों स्थानों पर दीप और उसकी शिखा, ढकी हुई हो या स्वतन्त्र हो, दोनों स्थितियों में दीप और शिखा में अन्तर नहीं आता ॥ ३२ ॥

दृष्टान्तः पाक्षिको वत्स मूर्त्तरूपे व्यवस्थितः ।
तथोक्तोल्पज्ञ बोधाय, त्वात्मात्वेष निराकृतिः ॥३२॥

भावार्थ हे वत्स । यह दृष्टान्त एक देशीय है और मूर्त्त वस्तु का है। तथापि अल्पज्ञों के बोधार्थ कह दिया है क्योंकि आत्मा तो निरुपम और निराकृति है ॥ ३२ ॥

ज्ञानगम्यः सदारम्यः स्वयंसिद्धः शुभोदयः ।
निरुपमो निराकारः आत्मनात्मैष बुद्धयते ॥३३॥

भावार्थ—हे मुनि । ज्ञानगम्य, सदा रमणीय स्वयंसिद्ध, शुभोदय, निरुपम और निराकार यह आत्मा, आत्मा से ही जाना जाता ॥ ३३ ॥

ॐ शर्मिति श्रीमत्कविरत्न उपाध्याय अमृत मुनि विरचिताया श्रीमद् गौतम गीताया "विचारयोगोनाम" दशमोऽध्याय ।

– एकादशोऽध्यायः –

गौतम बोले —

कियद्विधानि सर्वज्ञ मूलानि व्यसनानि वै।
परिभाषा च कातेषां विस्तरात्कुरु हि मां प्रति ॥१॥

गौतम बोले —

भावार्थ – हे सर्वज्ञ ! मूल व्यसन कितने प्रकार के हैं ? और उनकी परिभाषा क्या है ? कृपया विस्तार से मुझे सुनाने की कृपा करिये ॥ १ ॥

व्यस्यते विषयोऽनेन व्यसनं तद्धि गौतम !
तेषांमेदाःनिरूप्यन्ते, श्रूयतां दत्तचेतसा ॥ २ ॥

भावार्थ हे गौतम ! जिसके द्वारा पापकारी विषय-सेवन किये जायें, उसे व्यसन कहते हैं। उन भेदों को सुनो ॥ २ ॥

द्यूतं मांसश्च मद्यंच वैश्याखेटस्तथा मुने।
चौर्यं पराङ्गनासङ्गः सप्तैतद् व्यसनानिच ॥ ३ ॥

भावार्थ—हे मुनि। द्यूत, मास, मद्य, वैश्या, शिकार, चोरी और पर स्त्री गमन ये सात मूल व्यसन हैं ॥ ३ ॥

परिश्रमार्जितं वित्तं कितवः कैतवं गतः।
नाशयत्यात्म संपत्तिं मत्तोरत्नावलीं यथा ॥ ४ ॥

भावार्थ— हे मुनि ! जिस प्रकार पागल मनुष्य रत्नों के हार को मूर्खता से फैंक देता है, उसी प्रकार जुआ खेलने वाला जुआरी भी अपनी परिश्रम से कमाई हुई सम्पत्ति का नाश कर बैठता है ॥ ४ ॥

द्यूतः सङ्क्रामको रोगो दुर्मनो भ्रामयत्यसौ।
दूषितं कुरुते शश्वद् यशो भाग्यं च निर्मलम् ॥ ५ ॥

भावार्थ - हे मुनि। द्यूत, एक संक्रामक रोग है यह मनुष्य के निर्मल यश और भाग्य को निरन्तर दूषित करता है और मनुष्य की बुद्धि को भ्रान्त कर देता है ॥ ५ ॥

कामयन्तः पराभूतिं कितवास्तद्धनार्थिनः ।
स्वकीयामङ्गलं मत्र कुर्वन्त्येव महत्तरम् ॥ ६ ॥

भावार्थ—हे मत्र ! जुआरी धनको चाहते हुए महान् अमंगल कर बैठते हैं ॥ ६ ॥

कितवस्यापराभूतिं विजयो मृगतृष्णिकाम् ।
द्वैविध्यं तस्य सद्बुद्धे विशत्यामीत कारणम् ॥७॥

भावार्थ—हे सद्बुद्धि ! द्यूत की पराजय चिन्ता बढ़ाती है और विजय लालच बढ़ाती है, अतः दोनों ही प्रकार से दुःख का कारण है ॥ ७ ॥

बहिर्मान्धर्मने द्यूते विनाश्य प्राक्तनं पुनः ।
रोतिमैर्ष सुखं रात्रौ स्मारं स्मारं दिने दिने ॥ ८ ॥

भावार्थ—हे मुनि ! द्यूतकार जुए में अपने धन और धर्म का नाश करके रात दिन, अपने पुराने सुख को बार २ याद करके रोता है ॥ ८ ॥

आमिषाहारिणो लोका अपूतान्तर्विदूषिताः ।
भ्रान्तो मानुषं देहं गृह्णयन्ते जगतले ॥ ६ ॥

भावार्थ—हे मुनि ! मांसाहारी लोग संसार में अपवित्र हृदय से दूषित होकर मनुष्य का शरीर धारण करते हुए भी पशु के समान हैं ॥ ६ ॥

भगवानुवाच —

नक्षुद्रो न महानात्मा, न दीर्घो ह्रस्वएवच ।
समः सर्वेषु भूतेषु, आत्मतत्त्व स्थिति मुने ॥३०॥

भावार्थ—हे मुनि ! न आत्मा छोटा है और न ही बडा है । न दीर्घ है और न ओछा है । यह आत्मा तो सम्पूर्ण प्राणियों में सम है ॥ ३० ॥

सङ्कीर्णे विस्तृते वापिसमादीप स्थितिर्मुने ।
आवृता वा स्वतन्त्रा वा समाना तस्य सा शिखा ॥३१॥

भावार्थ—हे मुनि । सङ्कीर्ण अथवा विस्तृत दोनों स्थानों पर दीप और उसकी शिखा, ढकी हुई हो या स्वतन्त्र हो, दोनों स्थितियों मे दीप और शिखा में अन्तर नहीं आता ॥ ३२ ॥

दृष्टान्तः पाक्षिको वत्स मूर्त्तरूपे व्यवस्थितः ।
तथोक्तोल्पज्ञ बोधाय, त्वात्मात्वेष निराकृतिः ॥३२॥

भावार्थ हे वत्स । यह दृष्टान्त एक देशीय है और मूर्त्त वस्तु का है । तथापि अल्पज्ञों के बोधार्थ कह दिया है क्योंकि आत्मा तो निरुपम और निराकृति है ॥ ३२ ॥

ज्ञानगम्यः सदारम्यः स्वयंसिद्धः शुभोदयः ।
निरुपमो निराकारः आत्मनात्मैप बुद्धयते ॥३३॥

भावार्थ—हे मुनि ! ज्ञानगम्य, सदा रमणीय स्वयंसिद्ध, शुभोदय, निरुपम और निराकार यह आत्मा, आत्मा से ही जाना जाता ॥ ३३ ॥

ॐ शर्मिति श्रीमत्कविरत्न उपाध्याय अमृत मुनि विरचिताया श्रीमद् गौतम गीताया "विचारयोगोनाम" दशमोऽध्यायः ।

कामयन्तः परामूर्ति किल्पास्कपसधिनः ।
स्वकीयामधमर्त्सं मद्र कुर्वन्त्येव महत्परम् ॥ ६ ॥

भावार्थ—हे भद्र ! सभी कपटी कुमारी लोग दूसरों का मनभूस चाहते हुए महान् अमंगल कर बैठते हैं ॥ ६ ॥

क्लिवस्यामयपरिपत्तौ विषयो मृगतृष्णिकाम् ।
द्वै विध्यं तस्य सद्बुद्धे दिशत्यामीस कारणम् ॥७॥

भावार्थ—हे सद्बुद्धि ! यह त की परामय चिन्ता बढ़ाती है और विषय लालच बढ़ाती है, अतः दोनों ही प्रकार से दुःख दुःख का कारण है ॥ ७ ॥

यदिमान्स्वधनं य ते विनाश्य प्राकृतनं पुनः ।
रीतिनैर्म सुखं रात्री स्मारं स्मारं दिने दिने ॥ ८ ॥

भावार्थ—हे मुनि ! यह प्रकार सुख में अपने बाह्य और अन्त धन का नाश करके रात दिन, अपने पुराने सुख का बार २ याद करके रहता है ॥ ८ ॥

आमिषाहारिणो लोका अपूतान्तर्निरूपिताः ।
धरन्तो मानुषं देहं गृद्धायन्ते जगत्पते ॥ ९ ॥

भावार्थ—हे मुनि ! मांसाहारी लोग संसार में अपवित्र हृदय से दूषित होकर मनुष्य का शरीर धारण करते हुए भी गृद्ध के समान हैं ॥ ९ ॥

व्यस्यते विषयोऽनेन व्यसनं तद्धि गौतम।
तेषाँमेदाःनिरूप्यन्ते, श्रूयताँ दत्तचेतसा ॥ २ ॥

भावार्थ हे गौतम। जिसके द्वारा पापकारी विषय-सेवन किये जायें, उसे व्यसन कहते हैं। उन भेदों को सुनो ॥ २ ॥

द्यूतं मांसंश्च मद्यंच वैश्याखेटस्तथा मुने।
चौर्य पराङ्गनासङ्गः सप्तैतद् व्यसनानिच ॥ ३ ॥

भावार्थ—हे मुनि। द्यूत, मास, मद्य, वैश्या, शिकार, चोरी और पर स्त्री गमन ये सात मूल व्यसन हैं ॥ ३ ॥

परिश्रमार्जितं वित्तं कितवः कैतवं गतः।
नाशयत्यात्म संपत्तिं मत्तोरत्नावलीं यथा ॥ ४ ॥

भावार्थ—हे मुनि। जिस प्रकार पागल मनुष्य रत्नों के हार को मूर्खता से फैंक देता है, उसी प्रकार जुआ खेलने वाला जुआरी भी अपनी परिश्रम से कमाई हुई सम्पत्ति का नाश कर बैठता है ॥ ४ ॥

द्यूतः सङ्क्रामको रोगो नुर्मनो भ्रामयत्यसौ।
दूषितं कुरुते शश्वत् यशो भाग्यं च निर्मलम् ॥ ५ ॥

भावार्थ—हे मुनि! द्यूत, एक संक्रामक रोग है यह मनुष्य के निर्मल यश और भाग्य को निरन्तर दूषित करता है और मनुष्य की बुद्धि को भ्रान्त कर देता है ॥ ५ ॥

— एकादशोऽध्याय —

गौतम बोले —

कियद्विधानि सर्वज्ञ मूलानि व्यसनानि वै ।
परिभाषा च व्यसेषां विस्तरात्ब्रूहि मां प्रति ॥१॥

गौतम बोले —

भावार्थ — हे सर्वज्ञ ! मूल व्यसन कितने प्रकार के हैं ? और उनकी परिभाषा क्या है ? कृपया विस्तार से मुझे बतलाने की कृपा करिये ॥ १ ॥

जीवहिंसां विना भद्र, मांसोनैवोपपद्यते ।
अतस्तद्भक्षणं निन्द्यं, पापात्पापतरं परम् ॥१०॥

भावार्थ- हे भद्र । जीव हिसा के विना कोई भी मास उत्पन्न नहीं हो सकता, अत मास भक्षण करना सब पापों मे वढ कर पाप है ॥ १० ॥

मांसादस्य मुखंवक्तिमांमोयस्यास्यतेमया ।
कर्मणोनीतिरित्येवं मां स मंभक्षयिष्यति ॥११॥

भावार्थ— हे मुनि । मासाहारी का मुख स्वयं इस सत्य को कहता है, "कि मैं आज जिस का मास खा रहा हू मा-स अर्थात् वह मुझ को खाएगा" । यही कर्म की नीति है ॥ ११ ॥

परोक्षे परनिन्दाऽपि पृष्ठमांसस्य भक्षणम् ।
तस्मादेषा न कर्त्तव्या मांसादेनानुलक्षिता ॥१२॥

भावार्थ हे मुनि । पीठ पीछे किसी की निन्दा करना भी पृष्ठमास भक्षण कहलाता है अत मासाहार के समान पर-निन्दा भी नहीं करनी चाहिये ॥ १२ ॥

गौतम उवाच —

मांसादाःप्रवदन्त्येतत्, हरिन्मांसे सजीविते ।
यथा हरित्तथा माँसोभक्ष्यो, दोषो न विद्यते ॥१३॥

भावार्थ—हे भगवन् । मासाहारी लोग, ऐसा कहते है "कि सब्जी और जीव मास दोनों सजीव हैं" । जिस प्रकार हरी सब्जी खाई जाती है, उसी प्रकार मास के खाने में कोई दोष नहीं ॥ १३ ॥

कामयन्तः परामूर्तिं कितवास्तमसावृताः ।
स्वकीयामङ्गलं मन्द कुर्वन्त्येव महत्तरम् ॥ ६ ॥

भावार्थ—हे मन्द ! तमी कपटी जुआरी लोग दूसरों का अमङ्गल चाहते हुए महान् अमंगल कर बैठते हैं ॥ ६ ॥

कितवस्यामर्षचिन्ता विषयो मृगतृष्णिकाम् ।
वै मिथ्ये तस्य सद्बुद्धे दिशत्यामीस कारणम् ॥७॥

भावार्थ—हे सद्बुद्धि ! द्यूत की पराजय चिन्ता बढ़ाती है और विजय लालच बढ़ाती है, अतः दोनों ही प्रकार से जुआ दुःख का कारण है ॥ ७ ॥

हरिमान्त्वर्धनं द्यूते विनाश्य प्राकृतने पुनः ।
रौतिमैव दुःखं रात्रौ स्मारं स्मारं दिन दिन ॥ ८ ॥

भावार्थ—हे मुनि ! द्यूतकार जुए में अपने मान और धन-धर्म का नाश करके रात दिन, अपने पूर्व सुख को बार २ याद करके रोता है ॥ ८ ॥

आमिषाहारिणो लोका अपवित्रान्नदूषिताः ।
धरन्तो मानुषं देहं गृध्रायन्ते जगत्तले ॥ ९ ॥

भावार्थ—हे मुनि ! मांसाहारी लोग संसार में अपवित्र द्रव्य से दूषित होकर मनुष्य का शरीर धारण करते हुए भी गृद्ध के समान हैं ॥ ९ ॥

मांसत्यागं विना भद्र ! नोदयत्यात्मिकी दया ।
दयां विना व्रतं सन्ध्या, समंव्यर्थं जपस्तपः ॥१७॥

भावार्थ—हे भद्र । मास त्याग के विना, आत्मिक दया का उदय नहीं होता और दया के विना, व्रत, संध्या, जप और तप सब व्यर्थ हैं ॥ १७ ॥

मद्यपानान्मतिर्भ्रष्टा स्मृतिश्चैव विनश्यति ।
जीवन्नत्र मदोन्मत्तो मद्यपो मृतकायते ॥१८॥

भावार्थ—हे गौतम ! शराब पीने से बुद्धि भ्रष्ट होती है, स्मृति का नाश होता है, जीता हुआ मदोन्मत्त शराबी मुर्दे के समान होता है ॥ १८ ॥

मद्याद्विवेक हीनत्वं, निर्लज्ज्वत्वं च जायते ।
दरिद्रत्वं विनीचत्व स्वान्यद्भेद विनाशनम् ॥१९॥

भावार्थ—हे गौतम । मद्य से, विवेकहीनता निर्लज्जता दरिद्रता, नीचता और स्वर भेद नाश आदि दुर्गुणों का जन्म होता है ॥ १९ ॥

मद्यपाः पथि गच्छन्तः सम्पतन्ति मुहुर्मुहुः ।
कदाचित्प्रलपन्तस्ते, दण्डादण्डि प्रकुर्वते ॥२०॥

भावार्थ - हे मुनि ! शराबी लोग मार्ग मे ठोकरें खाते हैं और कभी २ बडबडाते हुए आपस मे दण्डे बाजी करने लगते हैं ॥ २० ॥

भगवानुवाच —

जलेन निर्मितं भोज्यं चैकं मूत्रविनिर्मितम् ।
अभक्ष्य किं तयोर्मध्ये तद्ब्रूह्याशु गौतम ॥१४॥

भगवान् बोले —

भावार्थ—हे गौतम ! एक भोजन तो जल से बनाया गया और दूसरा मूत्र से बनाया गया। इन दोनों में अभक्ष्य कौनसा है यह प्रश्न माँसाहारियों की बुद्धि से पूछ कर बताओ ॥ १४ ॥

गौतम उवाच —

अपूतं मूत्र-निष्पन्न भोजनंतु महाप्रभो ।
अभक्ष्यं सर्वथा त्याज्यं मन्यते सकलानवाः ॥१५॥

गौतम बोले —

भावार्थ—हे महाप्रभु ! अपवित्र मूत्र से बना हुए भोजन को सभी लोग त्याज्य और अभक्ष्य मानते हैं ॥ १५ ॥

भगवानुवाच —

पानीयोत्पादितं सर्वं हरिज्जातं महामते ।
मांसस्तु मूत्रतो जात स्तस्मात् भक्ष्येतरोमतः ॥१६॥

भगवान् बोले —

भावार्थ—हे महामति ! सम्पूर्ण हरितवनस्पतियाँ जल से उत्पन्न होती हैं। मांस मूत्र से उत्पन्न होता है। इस लिए मांस सर्वथा अभक्ष्य है ॥ १६ ॥

वाराङ्गनाऽस्य लोकस्य धनैश्वर्यं तथासुखम् ।
अपहृत्य मर्त्यलोकेऽस्मि तिरस्करोतिहि मानवम् ॥२५॥

भावार्थ—हे मुनि । वेश्या इस मनुष्य का धन, ऐश्वर्य और सुख छीन कर तिरस्कार कर देती है ॥२५॥

वेश्यासङ्गेन मर्त्येषु जायन्ते बहवो रुजः ।
तेभ्यो दीर्घायुषोह्रासः संभवत्येव गौतम ॥२६॥

भावार्थ—हे गौतम । वेश्या के सग से मनुष्यों में अनेक रोग उत्पन्न हो जाते हैं । उन रोगों से दीर्घ आयु का ह्रास होता है ॥ २६ ॥

वेश्यायाः सकला वृत्तिः स्वार्थपूर्णाहि छद्मिका ।
धनस्योपासिका वेश्या, नरस्य कस्यचिन्न सा ॥२७॥

भावार्थ हे मुनि । वेश्या की सारी प्रवृत्ति स्वार्थ पूर्ण और छल से भरी हुई होती है । वेश्या धन की उपासिका है । किसी मनुष्य की नहीं ॥ २७ ॥

दुर्गतौ बहवोजीवाः वेश्या संगानुयायिनः ।
स्वकर्मणां फलं तत्र प्राप्नुवन्ति परंतप ॥२८॥

भावार्थ—हे परंतप । वेश्या का सग करने वाले बहुत से जीव नरकादि दुर्गतियों में अपने कर्मों का फल भोग रहे हैं ॥ २८ ॥

देवैर्विनिर्मिता भद्र द्वारका पूर्विशोभना ।
मदिरा पानयोगेन विनाशं सगता समा ॥२१॥

भावार्थ—हे भद्र ! देवों द्वारा निर्मित सुन्दर द्वारका नगरी का नाश इस शराब के ही योग से हुआ था ॥ २१ ॥

मदिरा पान मात्रेण मानवाः भुवि गौतम ।
कुर्वते शतशः पापं दुःख दुर्बुद्धिदायकम् ॥२२॥

भावार्थ—हे गौतम ! एक शराब से ही मनुष्य संसार में सैकड़ों दुःख और दुर्बुद्धि के देने वाले पाप करते हैं ॥ २२ ॥

नास्ति स्वर्गे सुरापाय किञ्चित्स्थानं प्रियंवद ।
तस्मै तु नरकद्वारं दिवारात्रमनावृतम् ॥२३॥

भावार्थ—हे प्रियवर ! शराबी के लिए स्वर्ग में कोई स्थान नहीं है । इन के लिए तो रात दिन नरक का द्वार ही खुला रहता है ॥ २३ ॥

वेश्यायाः संगकर्तारो मानवा विषयैषिणः ।
महादुःखं, महाकष्टं प्राप्नुवन्ति स्वजीवने ॥२४॥

भावार्थ—हे मुनि ! वेश्या की संगति करने वाले विषय के इच्छुक लोग अपने जीवन में महान् दुःख पाते हैं ॥ २४ ॥

वाराङ्गनाऽस्य लोकस्य धनैश्वर्यं तथासुखम् ।
अपहृत्य मर्त्यलोकेऽस्मि तिरस्करोतिहि मानवम्॥२५॥

भावार्थ—हे मुनि। वेश्या इस मनुष्य का धन, ऐश्वर्य और सुख छीन कर तिरस्कार कर देती है ॥२५॥

वेश्यासंगेन मर्त्येषु जायन्ते बहवो रुजः।
तेभ्यो दीर्घायुषोह्रासः संभवत्येव गौतम ॥२६॥

भावार्थ—हे गौतम। वेश्या के सग से मनुष्यों मे अनेक रोग उत्पन्न हो जाते हैं। उन रोगों से दीर्घ आयु का ह्रास होता है ॥ २६ ॥

वेश्यायाः सकला वृत्तिः स्वार्थपूर्णाहि छद्मिका।
धनस्योपासिका वेश्या, नरस्य कस्यचिन्न सा ॥२७॥

भावार्थ हे मुनि। वेश्या की सारी प्रवृत्ति स्वार्थ पूर्ण और छल से भरी हुई होती है। वेश्या धन की उपासिका है। किसी मनुष्य की नहीं ॥ २७ ॥

दुर्गतौ बहवोजीवाः वेश्या संगानुयायिनः।
स्वकर्मणां फलं तत्र प्राप्नुवन्ति परंतप ॥२८॥

भावार्थ—हे परंतप। वेश्या का सग करने वाले बहुत से जीव नरकादि दुर्गतियों में अपने कर्मों का फल भोग रहे हैं ॥ २८ ॥

आखेटन मनुष्याणां मानस प्रस्तरायते ।
प्रस्तरत्व गते चित्त निर्दयत्वं स्वयं मुने ॥२६॥

भावार्थ—हे मुनि! शिकार खेलने से मनुष्यों का मन पत्थर जैसा हो जाता है। जब मन ही पत्थर सा हो गया तो फिर निर्दयता स्वयं आ जाती है ॥ २६ ॥

यथा वैमुख्यकाद् भीत्या पलायन्तऽत्र जन्तवः ।
तथा तस्माद्गुणाः सर्वे भवन्त्यत्यन्तदूरगाः ॥३०॥

भावार्थ—हे मुनि! जिस प्रकार शिकारी से जीव जन्तु डरकर भाग जाते हैं उसी प्रकार उससे सब गुण भी अत्यन्त दूर हो जाते हैं ॥ ३० ॥

स्वबाणैर्यं गवबाणैर्वैर्हन्यन्ते ये मृगादयः ।
तैरपि हता भविष्यन्ति स्वयं कृतान्यहिंसनैः ॥३१॥

भावार्थ—हे मुनि! शिकारी लोग जिस प्रकार अपने बाणों से जीवों का घात करते हैं भाविकाल में अपने किये हुए हिंसा कार्य से वे स्वयं भी मारे जाएंगे ॥ ३१ ॥

सुखाभिलाषिणो जीवाः हिंसां नान्यस्य कुर्वते ।
रक्षयन्त्यखिलान् जीवान् सर्वोपायन गौतम ॥३२॥

भावार्थ—हे गौतम! सुख के अभिलाषी लोग किसी भी अन्य जीव की हिंसा नहीं करते बल्कि सब उपायों से जीव रक्षा ही करते हैं ॥ ३२ ॥

चौरीकर्म मनुष्याणामैहिके च परे मुने ।
तिरस्कुर्वञ्जनैः सर्वैर्दर्शयत्यतिदुर्गतिम् ॥३३॥

भावार्थ— हे मुनि । चोरी कर्म, मनुष्यों का इस लोक और परलोक में तिरस्कार कराता हुआ नरक मे ले जाता है ॥ ३३ ॥

पञ्चेन्द्रियाणि चौर्येण प्रवृत्तान्यघकर्मसु ।
भवन्त्यथ च जीवोऽयं नित्यं याति पराभवम् ॥३४॥

भावार्थ—हे मुनि ! चोरी कर्म से मनुष्य की पाचों इन्द्रिया पाप में लगती हैं । इसी कारण, यह जीव अन्त में निरादर पाता है ॥ ३४ ॥

अन्येनोपार्जिते वित्ते लुब्ध दृष्टि निपातनम् ।
अक्षम्योऽयं महादोपस्तस्करं पातयत्यधः ॥३५॥

भावार्थ हे मुनि । अन्य के धन पर ललचाई दृष्टि रखना, अक्षम्य महाअपराध है, जो चोर को नरक में गिराता है ॥३५॥

कामदृष्ट्याऽक्षि सम्पातः परनारीषु महामते ।
वर्जितं पाप-कर्मेदं मानवाखंडमण्डले ॥३६॥

भावार्थ—हे महामते । कामदृष्टि से परस्त्री पर दृष्टि पात करना, मनुष्य मात्र के लिये वर्जित है ॥ ३६ ॥

पर स्त्री–स्पर्शमात्रेण ब्रह्मचर्यव्रतं मुन ।
मंगीभवति संसारे मालिन्यं याति जीवनम् ॥३७॥

भावार्थ हे मुनि ! पर स्त्री के स्पर्श-मात्र से ब्रह्मचर्य व्रत नष्ट हो जाता है और संसार में जीवन मलिन हो जाता है ॥३७॥

ब्रह्मचर्य सुरक्षार्थे पर नारी परिग्रह' ।
परमावश्यको भद्र ! शरीरात्म–प्रपोषक' ॥३८॥

भावार्थ—हे भद्र ! ब्रह्मचर्य की रक्षा के लिये पर-स्त्री का त्याग परम आवश्यक है। यह शरीर और आत्मा का पोषक है ॥ ३८ ॥

व्यसनैः सप्तभिरेभि निशायां भोजनं मुन ।
परिहेयं सदा सर्वैरित्येषा मे निदेशना ॥३९॥

भावार्थ हे मुनि ! इन सात व्यसनों के साथ रात्रि में भोजन करना भी त्याज्य है यह मेरा शुभ उपदेश है ॥ ३९ ॥

तमिस्राहार कर्तार समुच्यन्त निशाचरा' ।
तस्मान्मानवै हेयं विषवद्रात्रिभोजनम् ॥४०॥

भावार्थ हे मुनि ! रात्री में खाने वाले मनुष्यों को निशाचर कहा जाता है। अत रात्रि मे भोजन करना विष के समान त्याज्य है ॥ ४ ॥

रात्रौ कीटाणु संवृष्टिः भोज्येभवति सूक्ष्मतः ।
तया स्वास्थ्यस्य संहानिः ततश्चित्तात्मवेदना ॥४१॥

भावार्थ हे मुनि । रात्रि मे भोजन पर सूक्ष्म कीटाणु पड़ते हैं जिन से स्वास्थ्य को हानि होती है, और फिर चित्त तथा आत्मा में भेदना होती है ॥ ४१ ॥

सुभाषितानि, पुष्पाणि दत्तानि ते हृदम्बुजे ।
गन्धयेः सर्वसंसारं सुगन्धेन प्रियंवद ॥४२॥

भावार्थ- हे प्रियवद । ये सुभाषित रूपी फूल मैंने तुम्हारे हृदयगम करा दिया है । इनकी सुगन्ध से सर्व ससार को सुगन्धित करो ॥ ४२ ॥

ॐ शमिति श्री मत्कविरत्न-उपाध्याय अमृतमुनि
विरचिताया श्रीमद्गौतमगीताया "व्यसन
योगोनाम" एकादशोऽध्याय ।

※)-०-(※

-: द्वादशोऽध्याय :-

भगवानुवाच —

दीयते यत्तदेवैतद्दानमित्यभिधीयते ।
मानवानां सदा दानं भवत्युद्धारकारणम् ॥१॥

भगवान् बोले —

भावार्थ—हे मुनि ! जो दिया जाय उसे दान कहते हैं । यह दान मानवों का सदा उद्धार करने वाला है ॥ १ ॥

दानेन लोभसंहारो लोभनाशेन 'तुष्टता'।
तया हिंसादि पापानां विनाशोऽस्ति ततःसुखम् ॥२॥

भावार्थ—हे मुनि। दान से लोभ का नाश होता है, लोभ के नाश से सन्तोष होता है और सन्तोष से हिंसा आदि पापों का नाश होता है। फिर शान्ति प्राप्त होती है ॥ २ ॥

सत्पात्रदान दानेन विधिवत्पूर्ण यत्नतः।
जीवनं सफलं सौम्य ! भवत्येवं मतिर्मम ॥ ३ ॥

भावार्थ—हे सौम्य। सुपात्र को विधिवत दान देने से जीवन सफल होता है, ऐसी मेरी विचारणा है ॥ ३ ॥

कुपात्रे वस्तु सम्पात ऊषरे क्षिप्त बीजवत्।
निष्फलं जायते वत्स ! तस्मात्पात्रं समाश्रयेत् ॥ ४ ॥

भावार्थ—हे वत्स। कुपात्र को दान देना ऊपर भूमि में डाले गये बीज के समान व्यर्थ होती है। अत पात्र को देखकर ही दान देना चाहिए ॥ ४ ॥

उत्तमं मध्यमं गर्ह्यं पात्राणि त्रिविधानि च।
अमीषु दानदानेन फलञ्चापि त्रिधं मुने ॥ ५ ॥

भावार्थ—हे मुनि। उत्तम, मध्यम और अधम भेद से पात्र तीन प्रकार के होते हैं। इन में क्रम से दान देने से फल भी इसी क्रम से अर्थात् उत्तम, मध्यम और अधम होता है ॥ ५ ॥

महाव्रतेषु संलग्नाः विरागा लोभमोहतः ।
मनोवाक्काय संशुद्धा उत्तमाः सन्ति गौतम ! ॥ ६ ॥

भावार्थ—हे गौतम ! पांच महाव्रतों के धारण करने वाले लोभ मोह से विरक्त, मन वचन काया से शुद्ध उत्तम पात्र होते हैं ॥ ६ ॥

सद्गृहस्थाश्चमहामान्याः सदाचारप्रचारिणः ।
परोपकारसन्तुष्टा मध्यमा स्युर्महामते ॥ ७ ॥

भावार्थ—हे महामते ! सदाचार का प्रचार करने वाले मान नीय परोपकारी सद्गृहस्थ मध्यम पात्र होते हैं ॥ ७ ॥

मिथ्यारंभाः महादम्भाः पापस्तम्भाश्च दुर्धियः ।
निरस्ताशेषसत्कृत्या गर्ह्याः सन्तीति सन्मते ॥ ८ ॥

भावार्थ—हे सन्मति ! झूठा आरम्भ करने वाले घमंडी पाप के स्तंभ मूर्ख, सब शुभ कर्मों के त्यागी मनुष्य नीच पात्र होते हैं ॥ ८ ॥

उत्तमे सति दानेन दिव्यदेऽत्र महाफलम् ।
तस्माच्च कर्मणांनाशस्ततो निर्वाणमश्नुते ॥ ६ ॥

भावार्थ—हे मुनि ! उत्तम महात्माओं को दान देने से महा फल की प्राप्ति होती है, जिससे कर्मों का नाश होकर "निर्वाण" पद प्राप्त होता है ॥ ६ ॥

स्वयंकल्याणभोक्तारोगोप्तारो धर्मकर्मणोः ।
उत्तमास्तेऽस्य विश्वस्य कल्याणं कुर्वते ध्रुवम् ॥१०॥

भावार्थ - हे मुनि । स्वयं कल्याण के भोक्ता, धर्म-कर्म के रक्षक उत्तम पात्र ही इस संसार का निश्चय ही कल्याण करते हैं ॥ १० ॥

मध्यमे निहितं दानं, यशः सम्पत्तिदायकम् ।
योजयति शुभे मार्गे, स्वर्गादिसौख्यमूलके ॥११॥

भावार्थ – हे मुनि । मध्यम पात्र को दिया दान यश सम्पत्ति को देता है । स्वार्गादिमूलक शुद्ध मार्ग में लगता है ॥ ११ ॥

अधमस्त्वधमस्थानं संशयोनात्र गौतम ।
तस्मात्सर्वं विचार्यैतत् दानकार्यं नियोजयेत् ॥१२॥

भावार्थ—हे गौतम ! अधम को दिया दान तो अधमस्थान पर ही ले जाता है । इस लिए सबको विचार कर दान कर्म करना चाहिये ॥ १२ ॥

पात्रापात्रविचारस्य विवेकोऽस्ति सुदुर्लभः ।
विवेकेन विना वत्स ! दानं नैव शुभप्रदम् ॥१३॥

भावार्थ—हे वत्स । पात्रापात्र के विचार का विवेक बहुत ही कठिन है, विवेक के विना दान शुभ नहीं होता ॥ १३ ॥

विवेकिजीवबोधाय दानव्याख्यां करोम्यहम् ।
तत्सर्वं दत्तचित्तेन शृणु सभेदवर्णनम् ॥१४॥

भावार्थ—हे मुनि ! विवेकी जीवों के बोधार्थ मैं दानों की व्याख्या करता हूँ । तुम ध्यान पूर्वक सुनो ॥ १४ ॥

कारुण्यभाव संयुक्त दीन हीनजनाय यत् ।
दीयते कृपयातत्स्यादनुकम्पेति गौतम ॥१५॥

भावार्थ—हे गौतम ! कारुण्य भाव से युक्त होकर दीन हीन मनुष्य के लिये जो दिया जाये उसे "अनुकम्पा दान" कहते हैं ॥ १५ ॥

व्यसनेऽभ्युदये वाऽपि यत्किञ्चिद्दीयते बुधैः ।
सहायार्थं तु दीनस्य संग्रह-दानमिष्यते ॥१६॥

भावार्थ—हे गौतम ! व्यसन में अभ्युदय में दीन की सहायता के लिए जो दान दिया जाता है, उसे संग्रहदान कहते हैं ॥ १६ ॥

भूभृतो रक्षकाणां वा दण्डपाशे जनस्य च ।
भयार्थं दीयते यत्तत् भयद नमुदाहृतम् ॥१७॥

भावार्थ हे मुनि ! राजा के लिये रक्षकों के लिये दण्ड पाशि मनुष्य के लिये भय से जो दान दिया जाय उसे 'भयदान' कहते हैं ॥ १७ ॥

पुत्र वियोग जातेन करुणाकलितेन च ।

दान तदीयतल्पादेः कारुण्य मंज्ञयामतम् ॥१८॥

भावार्थ—हे मुनि । पुत्रादि के वियोग मे करुणा से दिये गए दान को कारुण्यदान कहते हैं ॥ १८ ॥

परेणाभ्यर्थिनो दानं नर मार्थगतेऽपरे ।

ददाति लज्जयातत्तु 'लज्जादानं' प्रभण्यते ॥१९॥

भावार्थ—हे मुनि । दूसरे प्रतिष्ठित मनुष्य को साथ मे देख कर लज्जापूर्वक दिया गया दान लज्जादान कहलाता है ॥ १९ ॥

मुष्टिकेभ्यो यशोऽर्थयत् नटाय नर्त्तकाय च ।

गौरवदानमाहुस्तत् गर्वेण सम्प्रपद्यते ॥२०॥

भावार्थ—हे मुनि । पहलवान, नट, नर्त्तक आदि को गर्व से दिया गया दान गौरव दान कहलाता है ॥ २० ॥

हिंसादि पापकार्येषु संलग्नाय जनाय यत् ।

दीयते प्रविजानीयाद् दानं हि तद् धार्मिकम् ॥२१॥

भावार्थ—हे गौतम । हिंसादि कार्यों मे सलग्न मनुष्यों को दिया गया दान अधार्मिक होता है ॥ २१ ॥

सुपात्रेभ्यः सुधर्मिभ्यो यद्दानं दीयते बुधैः ।
समदु:खसुखेभ्यस्तद् धर्माय जायतेतराम् ॥२२॥

भावार्थ—हे गौतम ! सुपात्र सुधर्मी समताशील पुरुषों को दिया गया दान धर्मदान कहलाता है ॥ २२ ॥

फलेच्छया कृतं दानं प्रत्युपकारकारकम् ।
करिष्यतीति विज्ञेयं दानं भाविफलात्मकम् ॥२३॥

भावार्थ—हे गौतम ! फल की इच्छा से दिया गया प्रत्युपकारी दान करिष्यति कहलाता है ॥ २३ ॥

स्मृत्वा कृतोपकारंतु केनापि हितकाङ्क्षया ।
तस्य प्रत्युपकाराय ददाति तत्कृतामिधम् ॥२४॥

भावार्थ—हे मुनि ! उपकारी के उपकार का स्मरण करके जो दान दिया जाता है उसे 'तत्कृत' दान कहते हैं ॥ २४ ॥

लौकिकस्य परित्यागी फलस्याकपटी धमी ।
अनीर्ष्यासुख निर्मानी दानेऽदुःखीति तद्गुणाः ॥२५॥

भावार्थ – हे मुनि ! लौकिक फल की इच्छा का त्यागी निष्क पट क्षमावान ईर्ष्यारहित निरहंकार दान देकर दुःख न मानने वाला य दानी के छः गुण हैं ॥ २५॥

सुदानं मुक्तिदुर्गस्य तोरणं विद्धि गौतम ।
स दानी तत्प्रवेशाय समुत्को न परे जनाः ॥२६॥

भावार्थ हे मुनि । शुभ दान मुक्ति का मुख्य द्वार है वही दानी है, जो द्वार मे प्रवेश के लिये उत्सुक है । अन्य तो नाम के दानी है ॥ २६ ॥

भूते भूतं सुकल्याणं वर्त्तमानेऽपि दृश्यते ।
भविष्यति च तद्भावि दानस्येदं फलं मुने ॥२७॥

भावार्थ हे मुनि । दान से भूतकाल मे अनेक जीवों का कल्याण हुआ । वर्तमान काल में भी कल्याण हो रहा है और भविष्य में भी होगा ॥ २७ ॥

गरीयस्त्वाद्धि दानस्य सर्वे तीर्थङ्करा ननु ।
दीक्षायाःप्राक् प्रयच्छन्ति, वार्षिकं दानमुत्तमम् ॥२८॥

भावार्थ– हे मुनि । दान के गौरव को समझते हुए सब तीर्थङ्कर दीक्षा से पूर्व वार्षिक दान देते हैं ॥ २८ ॥

गौतम उवाच —

किं दानं भगवन् ! देयं येन श्रेयोऽभिलभ्यते ।
श्रेष्ठाच्छ्रेष्ठतरं यत्स्यात्तन्मह्यं कृपयोच्यताम् ॥२९॥

गौतम बोले —

भावार्थ—हे भगवन् । मुझे क्या दान देना उचित है, जिससे श्रेय प्राप्त हो सके । उस श्रेष्ठ से श्रेष्ठ दान को मेरे लिये कहिये ॥ २९ ॥

भगवानुवाच —

तुभ्यं वदामि सद्दानं ये त्वदाज्ञानुसारिणः ।
तेषां कृतेऽपि कल्याणं दानद्वय विधास्यति ॥३०॥

भगवान् बोले —

भावार्थ—हे मुनि ! मैं उन दो दानों का बयान करता हूँ जो तेरा और तेरी आज्ञा का पालन करने वालों का कल्याण करेंगे ॥ ३० ॥

ज्ञानदानं महादानमभयञ्च तदुत्तमम् ।
दानद्वयमिति प्राज्ञ ! सर्वं श्रेयस्करं सदा ॥३१॥

भावार्थ—हे प्राज्ञ ! ज्ञानदान और अभयदान ये दो दान परम उत्तम हैं। इनमें अभय दान सर्वश्रेष्ठ है। ये दोनों दान सर्व कल्याण कारक हैं ॥ ३१ ॥

यथा माता स्वसन्तानं रक्षति प्रेमभावतः ।
तथैवादोऽभयं दानं सर्वजीवान् महामते ॥३२॥

भावार्थ—हे महामते ! जिस प्रकार माता प्रेम भाव से अपनी सन्तान की रक्षा करती है, उसी प्रकार यह अभयदान सब जीवों की रक्षा करता है ॥ ३२ ॥

ॐ शान्ति श्रीमत्कविरत्न उपाध्याय अमर मुनि
विरचितायां श्रीमद् गौतम गीतायां "दान
भावनाम" द्वादशोऽध्यायः ।

—: त्रयोदशोऽध्याय :—

गौतम उवाच

महामन्त्रस्य माहात्म्यं, भगवान् ब्रूहि तन्मम।
आश्रयन्त्यतिवेलं यद्देवदानव मानवाः॥ १॥

भावार्थ—हे भगवन्! देव दानव और मानव जिस महामन्त्र का सदा आश्रय लेते है उस महामन्त्र के माहात्म्य को सुनाने की कृपा करिये॥ १॥

भगवानुवाच —

भूयतां सावधानेन सत्त्वबीज महामुने ।
सर्वार्थसाधकं नित्यं मन्त्रस्य परमेष्ठिन ॥ २ ॥

भावार्थ — हे महामुनि ! सब मनोरथों की सिद्धि करने वाले परमेष्ठी मन्त्र के मूल तत्त्व को, सचेत हो कर श्रवण कर ॥ २ ॥

महामन्त्रम्

(प्राकृत)

णमो अरिहन्ताणं णमोसिद्धाणं णमो आयरियाणं ।
णमोउवज्झायाणं णमोलोए सव्वसाहूणं ॥ ३ ॥

भावार्थ — अरिहन्तों को नमस्कार हो ! सिद्धों को नमस्कार हो, आचार्यों को नमस्कार हो उपाध्यायों को नमस्कार हो, और लोक में विद्यमान सब साधुओं को नमस्कार हो ॥ ३ ॥

माहात्म्यगाथा

(प्राकृत)

एसो पञ्चणमोक्कारो सव्व पाव प्पणासणो ।
मङ्गलाणं च सव्वेसिं पढमं हवई मङ्गलम् ॥ ४ ॥

भावार्थ — इन पांचों पदों को किया गया नमस्कार सम्पूर्ण पापों का सर्वथा नाश करने वाला सब मंगलों में आदि मंगल है ॥ ४ ॥

अरिहन्तस्तथार्हन्तो महारुहन्त एव च ।

पूज्यारहन्त इत्येते चत्वारोऽर्हन्तसंज्ञकाः ॥ ५ ॥

भावार्थ – हे मुनि । अरिहन्त, अर्हन्त, अरुहन्त, अरहन्त ये चार अरिहन्त भगवान् के नामान्तर हैं ॥ ५ ॥

रागद्वेषौ व्यवच्छिद्य वर्तन्ते ये महाबलाः ।

तेऽरिहन्त पदेनात्र संविलसन्ति सर्वदा ॥ ६ ॥

भावार्थ – हे मुनि ! रागद्वेष रूपी शत्रु का नाश करने वाले, महाबलशाली, श्री अरिहन्त भगवान् कहलाते हैं ॥ ६ ॥

सुरासुरनरेन्द्राणां, अर्हणीयत्वकारणात् ।

अर्हन्तपदवी जाता तेषां विपुल मञ्जुला ॥ ७ ॥

भावार्थ हे गौतम । सुर, असुर और नरेन्द्रों से पूजनीय होने के कारण श्री 'अरिहन्त' भगवान् को अर्हन्त कहते हैं ॥ ७ ॥

वारणात्सर्वपापानां भवाङ्कुर-निवारणात् ।

धारणात्सत्यधर्माणां, अरुहन्तेति निश्चितम् ॥ ८ ॥

भावार्थ हे गौतम । जिन्हों ने सर्व पापों के नाश के द्वारा जन्म-मरण के अंकुर का नाश कर दिया है, उन्हें 'अरुहन्त' कहते हैं ॥ ८ ॥

नावेद्य निखिलं वस्तु ज्ञान-पुञ्ज-प्रभावतः ।
यस्य लोकत्रये सौम्य ! सोऽर्हन्तः प्रकीर्तितः ॥ ९॥

भावार्थ—हे गौतम ! तीनों लोकों में जिस के ज्ञान से कोई भी वस्तु छिपी हुई नहीं है, उन्हें अरहन्त कहते हैं ॥ ९ ॥

अशोकश्चातपत्राणि सुरपुष्पाभिवर्षणम् ।
दिव्यध्वनिः प्रभा-पुञ्जो रुचः पीठं च दुन्दुभिः ॥
उत्पातापगमो भद्र ! ज्ञानार्चातिशयो तथा ।
वचनातिशयश्चेति द्वादशैतेऽर्हतोगुणाः । युग्म ॥१०॥

भावार्थ—हे भद्र । १ अशोक वृक्ष २ छत्रत्रय ३ सुर पुष्प वृष्टि, ४ दिव्यध्वनि ५ भामण्डल ६ चमर, ७ सिंहासन ८ देव दुन्दुभि ९ सर्व उपसर्ग नाश १० ज्ञानातिशय ११ अर्चाऽतिशय १२ वचनातिशय ये बारह अरिहन्त भगवान् के गुण हैं ॥ १० ॥

दानलाभौ तथा वीर्यं भोगोपभोग एव च ।
अन्तराया अमी पञ्च ! हास्यं रत्यरती भयम् ॥
काम' शोकश्च मिथ्यात्वं जुगुप्सा स्वपनं तथा ।
अविरतिस्त्वमज्ञानं रागद्वेषौ महामुने ॥११॥

भावार्थ—हे महामुने ! १ दान अन्तराय २ लाभ अन्तराय ३ वीर्य अन्तराय ४ भोग अन्तराय ५ उपभोग अन्तराय ये पांच अन्तराय और ६ हास्य ७ रति ८ अरति ९ भय १० काम ११ शोक, १२ मिथ्यात्व १३ ग्लानि १४ निद्रा, १५ अविरति १६ अज्ञान १७ राग १८ द्वेष ये अठारह दोष हैं ॥ ११ ॥

अष्टादशात्मकै रेभिर्दोषै र्मुक्ताःजिनेश्वरा ।
अर्हिन्तपदेनात्र शोभिताः लोकपावनाः ॥ १२ ॥

भावार्थ—हे गौतम। इन १८ दोषों से मुक्त, श्री जिनेश्वर भगवान अरिहन्त कहलाते हैं ॥ १२ ॥

निखिल कर्मणांनाशात्, निर्वाणाधिगमं मुने ।
सर्वदुःखविहीनत्वं सिद्धानां लक्षणं मतम् ॥ १३ ॥

भावार्थ—हे मुनि। सम्पूर्ण कर्मों का नाश करके सब दु खों से रहित निर्वाण पद को प्राप्त आत्मा ही सिद्ध कहलाती है ॥१३॥

अनन्तज्ञानतत्व च तथैव शक्तिदर्शने ।
अमूर्त्तश्च निराबाधो गुरुलघुत्वहीनता ॥
अक्षरःसर्वकालेषु निश्चलश्चसताम्बर ।
एभिरष्टगुणैर्युक्तः सिद्धःसिद्धालये स्थितः ॥ १४ ॥

भावार्थ—हे सताम्बर। अनन्तज्ञान, अनन्तशक्ति अनन्तदर्शन अमूर्त्त, निराबाध, अगुरु लघु, अक्षर और अचल ये आठ सिद्धों के गुण हैं। इन से सुशोभित सिद्ध भगवान् सिद्धालय मे विराजमान हैं ॥ १४ ॥

आचरति सदाचारं तथाऽचारयतीतरान् ।
चतुर्विधस्य संघस्य शास्ताऽचार्यः समुच्यते ॥ १५ ॥

भावार्थ—हे गौतम। जो स्वय सदाचार का आचरण करते हैं और दूसरों से नियम पूर्वक करवाते हैं, वे ही चतुर्विध संघ के शासक आचार्य होते हैं ॥ १५ ॥

एतन्मन्त्रं विजानीहि, तत्त्वं धर्मस्य गौतम ।

भवभीतिहरञ्चैव भुक्ति-मुक्ति-फलं परम् ॥२२॥

भावार्थ—हे गौतम ! यह पंच परमेष्ठी महामन्त्र धर्म का मूलतत्त्व संसार के भय का हरण करने वाला और भुक्ति मुक्ति का दाता है ॥ २२ ॥

रागशोकादयो नाशमाप्नुवन्ति स्मरणाद् भृशम् ।

अनुष्ठानाच्च पापानि मन्त्रस्यास्य महामुने ॥२३॥

भावार्थ—हे मुनि ! इस महामन्त्र के जाप से राग शोक स्मरण से भ्रम अनुष्ठान से सब पापों का नाश होता है ॥ २३ ॥

मानसं सुस्थिरीकृत्य जपन्ति ये जनाः भुवि ।

मुक्तिश्च सन्निधौ तेषामितरेषां तु का कथा ॥२४॥

भावार्थ—हे मुनि ! हृदय को स्थिर करके जो मनुष्य इस महामन्त्र का जाप करते हैं मुक्ति उनके पास सदा निवास करती है फिर अन्य गुणों की तो क्या कम है ॥ २४ ॥

महारत्नं यथा लोके प्रमादादुपपतनम् ।

समापद्य न गृह्णन्ति मानिर्वं समनुव्रजन् ॥२५॥

महामन्त्रं विहायैतन्मन्त्रमन्यदुपासते ।
काचाय प्रयतन्ते ते माणिक्यापेक्षया किल ॥२६॥

भावार्थ—हे मुनि । इस महामत्र को छोड कर जो अन्य क्षुद्र मन्त्रों की उपासना करते हैं, वे चिन्तामणि रत्न को छोडकर काच को ही ग्रहण करते हैं ॥ २६ ॥

ओमित्यपि जनुर्लेभे, एतन्मन्त्राद्धि गौतम ।
अत एतत्परं पूर्णं परेशं परमाक्षरम् ॥२७॥

भावार्थ—हे गौतम । मंत्रराज "ओम्" का जन्म भी इसी पंच परमेष्ठी मत्र से हुआ है, अत पच परमेष्ठी मन्त्र, पूर्ण, परेश और परमाक्षर है ॥ २७ ॥

अर्हदरूपि सिद्धानामाचार्याणां महामुने ।
उपाध्याय मुनीन्द्राणामग्रांशैरोङ्कृतेभवः ॥२८॥

भावार्थ हे मुनि । 'अर्हत्' का 'अकार' अरूपी सिद्धों का 'अकार' आचार्यों का 'आकार' उपाध्यायो का 'उकार' और मुनियों का स्वर रहित 'म्कार' इस प्रकार अ+अ=आ+आ =आ+उ=ओ+म्=ओम् शब्द की सिद्धि हुई ॥ २८ ॥

आस्येन्यस्य सितां श्लक्ष्णां सदोरां मुखवस्त्रिकाम् ।
पूतासने प्रसविश्य निष्कामस्तु जपेन्मुने ॥२९॥

भावार्थ—हे मुनि । मुख पर शुद्ध डोरे सहित मुख वस्त्रिका बाधकर तथा पवित्र आसन पर बैठ कर-निष्काम-भाव इस से महामत्र का जाप करे ॥ २९ ॥

जित पञ्चेन्द्रियाः नित्य ब्रह्मचार्येष्टसपदः ।
चतुष्कषाय निर्मुक्ता युक्ता पञ्चमहाव्रतैः ।
समितिपञ्चसंयुताः पञ्चाचार परायणा ।
त्रिगुप्ता विदिताचार्या षट् त्रिंशद्गुणाशु त्रिता ॥१६॥

भावार्थ—हे मुनि ! ५ पचेंद्रिय विजयी ६ ब्रह्मचारी १४ आठ सम्यग्दर्शनों के धारक, १८ चार कषायों से मुक्त २३ पांच महाव्रतों के पालक २८ पांच समितियुक्त ३३ पांच आचारों के पालक ३६ मन वचन और काय को जीतने वाले इन ३६ गुणों से युक्त महापुरुष आचार्य होते हैं ॥ १६ ॥

अभ्याप्यन्ते जना येन निजसान्निध्यमागता ।
उपाध्याय पदेनात्र पूजनीयः स गौतम ॥ १७ ॥

भावार्थ—हे गौतम ! जो अपने पास आये हुए मनुष्यों को अध्यात्मविद्या का उपदेश देते हैं उन्हें उपाध्याय कहते हैं ॥ १७ ॥

करणे चरणे चैव द्वादशाङ्गेषु पारगाः ।
त्रियोगानां प्रगोप्तारो ह्यष्टधा च प्रभावकाः ॥
एवं गुणानां ये सन्ति, धारकाः पञ्चविंशतेः ।
उपाध्याया इति प्रोक्ताः कलिकल्मषनाशनाः ॥ १८ ॥

भावार्थ हे गौतम ! करण गुणों के धारक १ चरण गुणों के धारक २ द्वादश अग शास्त्रों के ज्ञाता १४ तीन योगों के गोप्ता १७ आठ प्रकार के प्रभावक । २५ इन पच्चीस गुणों से युक्त महापुरुष उपाध्याय कहलाते हैं ॥ १८ ॥

साधनामात्मतत्त्वस्य तप आदि प्रसाधनैः ।
सम्पादयन्त्यहोरात्रं, साधवस्ते प्रकीर्त्तिताः ॥१६॥

भावार्थ—हे मुनि । जो तप आदि साधनों के द्वारा आत्म-तत्त्व की साधना का निश-दिन सम्पादन करते हैं ये ही पुरुष साधु कहलाते हैं ॥ १६ ॥

पञ्चेन्द्रिय सम्वरणाः पञ्च महाव्रत स्थिताः ।
मनोवाक्कायगोप्तारो विकषाय चतुष्टयाः ॥
त्रिसत्याश्च त्रिसम्पन्नाः विरक्ताः शमतांगताः ।
वेदनामृत्यु निर्भीकाः सप्तविंशति सद्गुणाः ॥२०॥

भावार्थ—हे मुनि । ५ पचेन्द्रियों को जीतने वाले, १० पच महाव्रत पालक, १३ मन वचन और काय को वस में करने वाले १७ चार कषाओं से रहित, २० तीन सत्यों से युक्त, २३ तीन गुणों से सम्पन्न, २४ विरक्त, २५ शान्त, २६ वेदना निर्भीक, २७ मृत्यु-निर्भीक, इन २७ गुणों के धारक साधुजन होते हैं ॥ २० ॥

एव जाताः गुणाः सर्वे ह्यष्टोत्तर शताधिकाः ।
तानेवादाय विद्वद्भिर्मिता माला शताष्टभिः ॥२१॥

भावार्थ—हे गौतम । इस प्रकार पंच परमेष्ठी के १०८ गुण होते हैं । उन्हीं को लेकर विद्वानों ने माला में १०८ दानों का प्रयोग किया है ॥ २१ ॥

एतन्मन्त्रं विजानीहि, तत्त्वं धर्मस्य गौतम ।
भवभीतिहरश्चैव मुक्ति-मुक्ति-करं परम् ॥२२॥

भावार्थ—हे गौतम ! यह पंच परमेष्ठी महामन्त्र धर्म का मूलतत्त्व संसार के भय को हरण करने वाला और मुक्ति मुक्ति का दाता है ॥ २२ ॥

रोगशोकादयो आपाभरयन्ति स्मरणाद् भ्रमाः ।
अनुष्ठानाच्च पापानि मन्त्रस्याऽस्य महामुन ॥२३॥

भावार्थ—हे मुनि ! इस महामन्त्र के जाप से रोग शोक स्मरण से भ्रम अनुष्ठान से सब पापों का नाश होता है ॥ २३ ॥

मानसं सुस्थिरीकृत्य जपन्ति ये जना भुवि ।
मुक्तिस्य सन्निधौ तपामितरेषां तु काकथा ॥२४॥

भावार्थ—हे मुनि ! हृदय को स्थिर करके जो मनुष्य इस महामन्त्र का जाप करते हैं मुक्ति उनके पास सदा निवास करती है फिर अन्य सुखों की तो क्या बात है ॥ २४ ॥

अहोयत नरा लोके अज्ञानावृतचेतस ।
समीपस्थं न गृह्णन्ति मौक्तिकं समनुग्रसत् ॥२५॥

भावार्थ—हे मुने ! यह आश्चर्य की बात है कि संसार के अज्ञानी जन पास में रहते हुए, इस महामंत्र रूप चिन्तामणि रत्न का नहीं ग्रहण करते ॥ २५ ॥

महामन्त्रं विहायैतन्मन्त्रमन्यदुपासते ।
काचाय प्रयतन्ते ते माणिक्यापेक्षया किल ॥२६॥

भावार्थ—हे मुनि । इस महामंत्र को छोड़ कर जो अन्य क्षुद्र मन्त्रों की उपासना करते हैं, वे चिन्तामणि रत्न को छोडकर काच को ही ग्रहण करते हैं ॥ २६ ॥

ओमित्यपि जनुर्लेभे, एतन्मन्त्राद्धि गौतम ।
अत एतत्पर पूर्णं परेश परमाक्षरम् ॥२७॥

भावार्थ—हे गौतम । मंत्रराज "ओम्" का जन्म भी इसी पंच परमेष्ठी मंत्र से हुआ है, अत पंच परमेष्ठी मंत्र, पूर्ण, परेश और परमाक्षर है ॥ २७ ॥

अर्हदरूपि सिद्धानामाचार्याणां महामुने ।
उपाध्याय मुनीन्द्राणामग्रांशैरोङ्कृतेभवः ॥२८॥

भावार्थ हे मुनि । 'अर्हत्' का 'अकार' अरूपी सिद्धों का 'अकार' आचार्यों का 'आकार' उपाध्यायों का 'उकार' और मुनियों का स्वर रहित 'मकार' इस प्रकार अ+अ=आ+आ =आ+उ=ओ+म्=ओम शब्द की सिद्धि हुई ॥ २८ ॥

आस्येन्यस्य सितौं शलचणां सदोरां मुखवस्त्रिकाम् ।
पूतासने प्रसविश्य निष्कामस्तु जपेन्मुने ॥२९॥

भावार्थ—हे मुनि । मुख पर शुद्ध डोर सहित मुख वस्त्रिका बाधकर तथा पवित्र आसन पर बैठ कर-निष्काम-भाव इस से महामंत्र का जाप करे ॥ २९ ॥

महत्त्वमस्य मन्त्रस्य गुरुगौरम शास्त्रिनः ।
तावत्सर्वं विजानीहि यावदन्यं निरूप्यत ॥३०॥

भावार्थ—हे गौतम । इस पचपरमेष्ठी महामंत्र का जितना भी वर्णन किया जाय, उतना ही थोड़ा है ॥ ३ ॥

येन भावेन यो मर्त्योमहामन्त्रं जपत्यहं ।
फलं तस्यानुसारेण प्राप्नोत्येव महामते ॥३१॥

भावार्थ—हे महामते ! जिस भाव से जो प्राणी इस महा मंत्र का जाप करता है उसे उसकी भावना के अनुसार ही फल प्राप्त होता है ॥ ३१ ॥

अखण्डत्वेन यो जीवः करोत्यस्य जपक्रियाम् ।
अखंडो जायत सोऽपि न कश्चिद् स्त खण्डितः ॥३२॥

भावार्थ—हे मुनि ! इस महामंत्र का जो अखण्डता पूर्वक जाप करता है उसका जीवन अखण्ड हो जाता है । वह कभी दुःख खण्डित नहीं होता ॥ ३० ॥

एतन्मन्त्रप्रभावेण भूते ऽनन्ता गताः ।
भविष्यति भविष्यन्ति वर्तमाने भवन्ति च ॥३३॥

भावार्थ—हे मुनि इस मंत्र के प्रभाव से भूतकाल में अनन्त जीव मुक्त हुए हैं भविष्य में होंगे और वर्तमान में हो रहे हैं ॥ ३३ ॥

नवाङ्कं निर्मित मन्त्रं नवकारेण निश्चितम् ।
ददाति परमानन्द भजते च नवाङ्कवत् ॥३४॥

भावार्थ—हे महामुनि । नव अङ्कों से बना हुआ यह 'नवकार' महामत्र, अखड नव के अङ्क के समान परमानन्द को देता है ॥ ३४ ॥

मोहरागभयक्रोध वीचिराजि–समाकुले ।
पतितानां भवाब्धौ वै, एतन्नौरिव तारकम् ॥३५॥

भावार्थ—हे मुनि । मोह, राग, भय और क्रोध की तरङ्गों से तरङ्गित ससार-सागर में यह महामत्र नौका के समान पार करने वाला है ॥ ३५ ॥

जाग्रता स्वपता चापि पिवता खादता तथा ।
सर्वावस्थासु मर्त्येन, न विधेयास्य विस्मृतिः ॥३६॥

भावार्थ—हे महामुनि । जागते, सोते, पीते, खाते और किसी भी अवस्था में मनुष्य को इस महामन्त्र का विस्मरण नहीं करना चाहिए ॥ ३६ ॥

ॐ शमिति श्री मत्कविरत्न-उपाध्याय अमृतमुनि विरचिताया श्रीमद्गौतमगीताया "महामत्र योगोनाम" एकादशोऽध्याय ।

-o-

चतुर्दशोऽध्याय

भगवानुवाच ! —

यत्कर्मकारणेनात्मा संसारेऽटति नित्यशः ।
तान्यहं क्रमशो वच्मि स्वरूपं च निशम्यताम् ॥ १ ॥

भावार्थ—हे गौतम ! जिन कर्मों के कारण से यह आत्मा सदा संसार में भटकती है उन कर्मों को मैं क्रम से कहता हूँ । तुम उनके स्वरूप को सुनो ॥ १ ॥

तज् ज्ञानावरणं कर्म दर्शनावरणं ततः ।
वेद्यं मोह्यं तथाऽऽयुष्कं नाम गोत्रान्तरायके ॥ २ ॥

भावार्थ—हे मुनि ! ज्ञानावरणीय, दर्शनावरणीय, वेदनीय, मोहनीय, आयु, नाम, गोत्र और अन्तराय ये आठ कर्म हैं ॥ २ ॥

तत्र ज्ञानवृतं कर्म पञ्चधा परिकीर्तितम् ।
श्रुतमत्यवधिज्ञान-मनः केवल भेदतः ॥ ३ ॥

भावार्थ—हे गौतम ! ज्ञानावरणीय कर्म के पाच भेद हैं, श्रुत ज्ञानावरणीय और केवल ज्ञानावरणीय ॥ ३ ॥

आत्मनो ज्ञानशक्तिं यत् आच्छादयति गौतम ।
तज् ज्ञानावरणं कर्म सर्वज्ञत्वाववाधकम् ॥ ४ ॥

भावार्थ—हे गौतम ! जो आत्मा की ज्ञान शक्ति को ढक लेता है और सर्वज्ञत्व में वाधक होता है उसे ज्ञानावरणीय कर्म कहते हैं ॥ ४ ॥

अरित्वं निह्नवत्वं च विघ्नो द्वेषोऽवहेलना ।
ज्ञानेष्वेव विसंवादो ज्ञानावृतस्य हेतवः ॥ ५ ॥

भावार्थ—हे गौतम ! ज्ञान तथा ज्ञानी मे शत्रुता, निन्ह्वता, विघ्न, द्वेष, अवहेलना और विसंवाद रखने से ज्ञानावरणीय कर्म का वन्धन होता है ॥ ५ ॥

आत्मसाक्षात्कृतिं भद्र ! रुणद्धि यदि तद्वृत्ति ।
दर्शनावरणं कर्म-द्गुनस्यावरोधकम् ॥ ६ ॥

भावार्थ—हे गौतम ! आत्म-साक्षात्कार को जो कर्म रोकता है, उस दर्शन-शक्ति के बाधक कर्म को दर्शनावरणीय कर्म कहते हैं ॥ ६ ॥

चक्षुर्मचक्षुर्म अवधि' कमलाह्वयम् ।
निद्रानामिका भद्र ! निद्रानिद्रा तथैव च ॥
पुनश्च प्रचला नाम्नी प्रचलाप्रचला तथा ।
स्त्यानगृद्धीति भेदेन नवधा दर्शनावृतम् ॥ ७ ॥

भावार्थ हे भद्र ! चक्षुदर्शनावरणीय अचक्षुदर्शनावरणीय अवधि दर्शनावरणीय, निद्रा निद्रानिद्रा प्रचला प्रचलाप्रचला केवलदर्शनावरणीय स्त्यानगृद्धी ये दर्शनावरणीय कर्म के नौ भेद हैं ॥ ७ ॥

चर्त्ति निह्नवत्वं च विघ्नो प्रद्वेषोऽपदेशना ।
दर्शनेषु विसम्वादो दर्शनावृतहेतवः ॥ ८ ॥

भावार्थ हे गौतम ! दर्शन तथा दर्शनी में शत्रुता निह्नवता विघ्न द्वेष अवहेलना तथा विसम्वाद रखने से दर्शनावरणीय कर्म का बन्धन होता है ॥ ८ ॥

निदान' द' च विस्मृत्य कमशः पुण्यपापयोः ।
फलानामनुभूतिर्या वेद्य तत्कर्म गौतम ॥ ९ ॥

भावार्थ—हे गौतम ! आत्मानन्द को भूलकर पुण्य और पाप कर्म के फल की अनुभूति को वेदनीय कर्म कहते हैं ॥ ९ ॥

वेद्यं द्विविधमित्युक्तं सुखदुःखादिभेदतः ।
सुखैः सुखं तु दुःखैश्च, दुःखस्यैवावबन्धनम् ॥१०॥

भावार्थ—हे मुनि ! वेदनीय कर्म दो प्रकार का होता है सुख वेदनीय और दुःख वेदनीय। सुख देने से सुख, दुःख देने से दुःख का बन्धन होता है ॥ १० ॥

सम्यग्भावं परित्यज्य जीवोऽयं येन कर्मणा।
मिथ्यात्वभावनामेति तन्मोह्यं प्रणिगद्यते ॥११॥

भावार्थ हे मुनि। जिस कर्म के द्वारा जीव सम्यग्भाव को छोड़ कर मिथ्याभाव को प्राप्त होता है उसे मोहनीय कर्म कहते हैं ॥ ११ ॥

द्विविधं मोहनीयं तु दर्श-चारित्र्यभेदतः।
तत्रापि त्रिविधं चैव दर्शनं प्रविकथ्यते ॥१२॥

भावार्थ हे मुनि। मोहनीय कर्म दो प्रकार का है दर्शनमोहनीय और चारित्र्य मोहनीय उन में से दर्शनमोहनीय के तीन भेद हैं ॥ १२ ॥

सम्यक्त्वमथ मिथ्यात्वं दर्शनं मिश्रसंज्ञकम् ।
एतत्त्रितयकं सौम्य ! केवलस्य प्रबाधकम् ॥१३॥

भावार्थ—हे सौम्य ! सम्यक्त्व मोहनीय, मिथ्यात्व मोहनीय तथा मिश्र मोहनीय ये तीन भेद दर्शन मोहनीय कर्म के हैं। ये तीनों केवल ज्ञान के बाधक हैं ॥ १३ ॥

मोहनीयचरित्रस्य भेदद्वयमिति कथ्यते ।
कषायं प्रथमं चैव द्वितीयं नो कषायकम् ॥१४॥

भावार्थ—हे गौतम ! चारित्र मोहनीय कर्म के दो भेद हाते हैं कषाय मोहनीय और नोकषाय मोहनीय ॥ १४ ॥

कषायैर्नैजमात्मानं रञ्जयेत्तत्कषायकम् ।
तेषामुद्दीपको भद्र ! नो कषायो भयावह ॥१५॥

भावार्थ—हे भद्र ! आत्मा को जो कषायों से रङ्गता है उसे कषाय तथा जो कषायों को उद्दीप्त करता है उसे भयङ्कर नोक षाय कहते हैं ॥ १५ ॥

चतुर्गतिषु येनात्मा श्वासैरुन्मान्ति स्थितिम् ।
प्राप्यते कर्मणा नित्यं तदायुष्यं निगद्यते ॥१६॥

भावार्थ—हे गौतम ! श्वासों के परिमाण से जिस कर्म से आत्मा चार गतियों में प्राप्त होती है उसे आयुष्य कर्म कहते हैं ॥ १६ ॥

नारकं कर्म तैर्यंच मानुष्यं देवमेवच ।
एतच्चतुर्विधं सम्यक् प्रथमानुष्यकर्मकम् ॥१७॥

भावार्थ—हे मुनि ! नरक आयुष्य तिर्यंच आयुष्य मनुष्य आयुष्य और देव आयुष्य ये चार प्रकार के आयुष्य कर्म हैं ॥१७॥

महारम्भो महामूर्च्छा पञ्चेन्द्रियाभिमर्दनम् ।
अभक्ष्याभक्षण चेति नयन्ति नरकं जनम् ॥१८॥

भावार्थ—हे मुनि । महारम्भ, महामोह, पञ्च इन्द्रियधारी प्राणियों का मर्दन तथा अभक्ष्यमासादिभक्षण ये चार कारण मनुष्य को नरक में ले जाते हैं ॥ १८ ॥

असत्यं, छलनं चैव कपटं न्यूनतौलनम् ।
अमीभिः कारणैर्जीवो याति तिर्यग्गतिं सदा ॥१९॥

भावार्थ—हे गौतम । असत्यभाषण, छल, कपट और कम तौल माप इन चार कारणों से जीव तिर्यंच गति मे जाता है ॥१९॥

प्रकृतिभद्र नम्रत्वे कारुण्यञ्चानुसूयता ।
अमीभिः कारणैर्जीवो नरत्वं समुपश्नुते ॥२०॥

भावार्थ—हे गौतम । प्रकृतिभद्रता, नम्रता, अनुकम्पा, तथा अनुसूया, ये मनुष्यगति प्राप्ति के चार कारण हैं ॥ २० ॥

मुनिश्रावकयोर्धर्मस्तथाऽज्ञानतपो व्रतम् ।
अकामनिर्जरा चैते चत्वारःस्वर्गहेतवः ॥२१॥

भावार्थ—हे मुनि । साधु और श्रावक धर्म का पालन, अज्ञानतप तथा अकाम निर्जरा ये चार स्वर्ग प्राप्ति के कारण हैं॥ २१ ॥

स्वच्छं सौन्दर्य संयुक्तं तथाच विकृतं वपुः।
लभ्यते येन कृत्येन तन्नामेति विचक्षण ॥२२॥

भावार्थ—हे विचक्षण! सुन्दरता युक्त अथवा कुरूप शरीर जिस कर्म से प्राप्त होता है उसे नाम-कर्म कहते हैं ॥ २२ ॥

शुभाशुभ प्रभेदेन नामकर्म द्विधा मतम्।
येनासौ लभते जीव कीर्तिमापकीर्तिकाम् ॥२३॥

भावार्थ हे मुनि! शुभ और अशुभ भेद से नाम कर्म दो प्रकार का होता है, जिस से जीव यश और अपयश को प्राप्त करता है ॥ २३ ॥

भावना देह भाषाणां सारल्येन नियोजनम्।
तथा च शुभयोगेन जायते शुभ नामकम् ॥२४॥

भावार्थ—हे मुनि! भाव देह भाषा इनका सरलता से प्रयोग करना तथा शुभयोग के द्वारा शुभनामकर्म की प्राप्ति होती है ॥ २४ ॥

भाव भाषाशरीराणां कौटिल्येनाभिवर्तनम्।
विसम्वाद प्रयोगेण जायतेऽशुभनामकम् ॥२५॥

भावार्थ—हे मुनि! भाव भाषा और शरीर का कुटिल प्रयोग तथा विसम्वाद यश इन चार कारणों से अशुभ नाम कर्म की प्राप्ति होती है ॥ २५ ॥

यत्कृतं कर्म योगेन, उच्चैर्नीच्चैस्त्वसंयुतम् ।
सामान्यं लभते जीवो गोत्रकर्म तदीहितम् ॥२६॥

भावार्थ — हे गौतम । जिस कृत कर्म के सम्बन्ध से मनुष्य ऊंची, नीची जाति को प्राप्त करता है, उसे गोत्र कर्म कहते हैं ॥ २६ ॥

उच्चैर्नीचादि भेदेन गोत्रकर्मापि च द्विधम् ।
आद्यस्याष्टैव संभेदाः द्वितीयस्यापि तद्विधम् ॥२७॥

भावार्थ—हे मुनि । ऊंच नीच भेद से गोत्र कर्म दो प्रकार का होता है । ऊंच और नीच इन दोनों गोत्र कर्मों के आठ-आठ भेद होते हैं ॥ २७ ॥

जातिवंशौर्यरूपाणां तपो ज्ञानाय सम्पदाम् ।
गर्वेणाभ्येतिनीचत्व नम्रत्वेन तथोन्नतिम् ॥२८॥

भावार्थ — हे मुनि । जाति वंश, बल, रूप, तप, ज्ञान लाभ और ऐश्वर्य इन आठों का मद करने से नीच गोत्र की प्राप्ति होती है तथा इनका मद न करने से उच्च गोत्र की प्राप्ति होती है ॥ २८ ॥

यदभीष्टेषु कार्येषु नानाविघ्नविधायकम् ।
अन्तरायं च तत्कर्म भवति नात्र संशयः ॥२९॥

भावार्थ—हे गौतम । जो अभीष्ट कार्यों में अनेक प्रकार के विघ्न करता है उसे अन्तराय कर्म कहते हैं । इसमें कोई सन्देह नहीं है ॥ २९ ॥

दानं लाभस्तथा भोगः चोपभोगश्च वीर्यकम् ।
एतत्पञ्चात्मकैरेभि जीवः लभ्यन्तरायताम् ॥२०॥

भावार्थ—हे गौतम ! दान, लाभ, भोग, उपभोग और वीर्य इन पांचों से जीव अन्तराय को प्राप्त होता है ॥२ ॥

अष्टानां कर्मकष्टानां विनष्टि र्मुक्तिदृष्टिभिः ।
आत्मनः शुद्धकर्त्तव्यं परं लक्ष्यं च गौतम ॥२१॥

भावार्थ—हे गौतम ! मुक्ति रूपी चर्चा से कष्टप्रद आठ कर्मों का नाश करना ही आत्मा का परम कर्त्तव्य और परम लक्ष्य है ॥ २१ ॥

अष्टकर्मस्वर्वेषु ज्ञानादेः मोहकं तथा ।
अन्तरायं च घात्यानि भिन्नान्यघातकानि च ॥२२॥

भावार्थ—हे गौतम ! आठ कर्मों में ज्ञानावरणीय दर्शना वरणीय ये दो आदि के तथा मोहनीय और अन्तराय ये चार घातक कर्म हैं तथा इन से भिन्न चार अघातक हैं ॥ २२ ॥

अन्तरा घात्यकृत्यान्तं कैवल्यं नैव लभ्यते ।
विना कैवल्यभावेन सिद्धस्थानमसम्भवम् ॥२३॥

भावार्थ—हे विज्ञ ! घातक कर्मों के नाश के बिना केवल ज्ञान प्राप्त नहीं होता और बिना केवल ज्ञान के सिद्ध स्थान प्राप्त होना असम्भव है ॥ २३ ॥

गौतम उवाच :—

चेतनोऽयं प्रभो ! जीवो जडभूतंतुकर्मकम् ।
कथं चैतन्यमेतानि कर्माणि निन्युरापदि ॥३४॥

भावार्थ—हे प्रभो । यह जीवात्मा तो चेतन है और कर्म जड है, जड कर्मों ने इस चैतन्य को कैसे दुखी कर दिया है ॥ ३४ ॥

भगवानुवाच –

यथा मद्यप्रभावेण चैतन्यं प्रविलुप्यते ।
तथाऽऽत्मानं च कर्माणि वध्नन्ति नात्र संशयः ॥३५॥

भावार्थ—हे मुनि । जैसे जड शराव मनुष्य की चेतना को विलुप्त कर देती है और उसे अपने प्रभाव से वाध लेती है, उसी प्रकार आत्मा को जड कर्म बाध लेते हैं, इस मे कोई सदेह नहीं है ॥ ३५ ॥

कर्मैकं व्यापकं लोके सिद्धान्तोऽय सुविस्तृतः ।
विनैमं दर्शनं सर्वं संभृता वस्ति पङ्गुवत् ॥३६॥

भावार्थ—हे गौतम । कर्म एक व्यापक और विस्तृत सिद्धान्त है । इस के विना सारा दर्शन शास्त्र लूले मनुष्य की भांति दुखी होता है ॥ ३६ ॥

मन्यमानाः जगत्सर्वं क्रीडनं च जगत्पतेः ।
अज्ञास्ते कर्म वादस्य सत्याद्दूरानुगामिनः ॥३७॥

भावार्थ—हे मुनि । सम्पूर्ण जगत को ईश्वर का खिलौना मानने वाले कर्मवाद से अनभिज्ञ हैं और वे सत्य मार्ग से भी दूर हैं ॥ ३७ ॥

गौतम उवाच —

निजानिष्टफलं मोक्तु न कश्चित् प्रभुतः प्रभो ।
तस्मात्कश्चित्फलदायी भवत्येवेति कथन ॥३८॥

भावार्थ—हे प्रभो ! कुछ लोग ऐसा कहते हैं कि कोई भी मनुष्य अपने पाप का फल स्वयं भोगने का प्रभुत नहीं रखता अतः कोई फल देने वाला (ईश्वर) अवश्य है ॥ ३८ ॥

भगवानुवाच :—

प्रत्येकेषु पदार्थेषु निहिता स्वशक्तयः ।
अतस्ताः शक्तयः सौम्य ! फलं दातुं समर्थिकाः ॥३९॥

भावार्थ—हे सौम्य ! प्रत्येक पदार्थ में अपनी २ स्वतन्त्र शक्तियां निहित हैं, वे ही शक्तियां कर्मफल देने में स्वयं समर्थ होती हैं ॥ ३९ ॥

मोक्तुरिच्छानुसारेण सम्प्राप्त न फलं क्वचित् ।
यथा विषादि लोकस्य निस्पृहो मरणं ध्रुवम् ॥४०॥

भावार्थ—हे सौम्य ! कर्म का फल भोक्ता की इच्छानुसार नहीं मिलता । वस्तुतः वाध्य होकर फल भोगना पड़ता है । जैसे विष पीने वाला मनुष्य इच्छा के बिना अवश्य ही मरता है ॥४०॥

ईश्वरोऽस्ति मेधाविन् ! कर्मणां फलदायकः ।
अन्यथा सिद्धबुद्धीनां मिथ्येयं प्रविडम्बना ॥४१॥

भावार्थ—हे मेधावी ! कर्म का फल देने वाला ईश्वर है, यह कल्पना व्यर्थ बुद्धि वाले अज्ञानी पुरुषों की है ॥ ४१ ॥

कर्मग्रस्तस्त्वमौजीवश्चाटन् नानाविर्योनिषु ।
प्राप्नोत्येतत्प्रभावेण जन्म-नाशादिवेदनाम् ॥४२॥

भावार्थ— हे मुनि । कर्मग्रस्त यह जीव अनेक योनियों मे घूमता हुआ जन्म-मरणादि वेदना को प्राप्त होता है ॥ ४२ ॥

आत्मनोपार्जितं कर्म निजायान्यस्य वाकृते ।
सर्वं तत्तस्य वाऽन्यस्य भोग्यतां याति गौतम ॥४३॥

भावार्थ—हे गौतम । आत्मा ने जो कर्म अपने लिये या दूसरे के लिये किया है, उसका फल कर्त्ता को ही भोगना पड़ता है ॥ ४३ ॥

यदा कर्मोदयस्तर्हि ज्ञातिपुत्रान्यबान्धवाः ।
न रक्षन्ति भवे जीवं कुर्वन्त्येव पराभवम् ॥४४॥

भावार्थ—हे गौतम ! जब कर्म का उदय होता है, तब ज्ञाति पुत्र तथा अन्य बाधव कोई भी संसार में रक्षा नहीं करता, प्रत्युत निरादर ही करते हैं ॥ ४४ ॥

यथाऽण्डेन बकी जाता बकीतोऽण्डं प्रजायते ।
एवं मोहादिना तृष्णा, तृष्णया मोह उच्यते ॥४५॥

भावार्थ—हे मुनि । जैसे बगुली, अण्डे से उत्पन्न होती है तथा बगुली से अण्डा उत्पन्न होता है, इसी प्रकार मोह आदि से तृष्णा और तृष्णा से मोह उत्पन्न होता है ॥ ४५ ॥

रागद्वेषावुभौ द्वयौ कर्म बीजौ हि गौतम ।
मोहात्संजायते कर्म, कर्मदुःखस्य कारणम् ॥४६॥

भावार्थ—हे गौतम ! राग और द्वेष दोनों कर्म के बीज हैं और मोह से कर्म का जन्म होता है और कर्म दुःख का कारण है ॥ ४६ ॥

यो विमुक्तो मनो मोहात्तनोत्तीर्णो भवार्णव ।
तस्मान्मोहो विजेतव्यः सौम्य सम्य-विधायिभिः॥४७॥

भावार्थ—हे मुनि ! जो मनुष्य मोह से मुक्त हो गया है उसी ने संसार सागर को पार किया है । इस लिये सुख को मित्र बनाने वाले पुरुषों को मोह को जीतना चाहिये ॥ ४७ ॥

ॐ शमिति श्रीमत्कविरत्न उपाध्याय अमृत मुनि विरचितायाँ श्रीमद्गौतमगीतायाँ "कर्म योगो" नाम चतुर्दशोऽध्याय

—पञ्चदशोऽध्यायः—

भगवानुवाच —

उपदेशोमदादिष्टस्त्रिकालास्तित्वसंयुतः ।
अनादिश्चान्तताहीनो विशुद्धः सर्वदाऽनघ ॥१॥

भावार्थ - हे अनघ ! मेरा यह उपदेश त्रिकालवर्त्ती है अनादि और अनन्त परम विशुद्ध है ॥ १ ॥

सर्वतीर्थङ्करा प्रोचुरुपदेशं मुनिर्मलम् ।
सम्भाविनस्तमेवाग्रे वदिष्यन्त्येव निश्चितम् ॥२॥

भावार्थ—हे मुनि ! सब तीर्थंकरों ने जिस निर्मल उपदेश को पूर्वकाल में दिया है उसी को भावी तीर्थंकर भी देंगे यही निश्चित है ॥ २ ॥

क्रियैवास्ति समुत्कृष्टा सिद्धिदात्री महाफला ।
कियन्तीमन्वते भद्र ! क्रियाभिरवासिदुर्धियः ॥३॥

भावार्थ—हे भद्र ! क्रिया ही सर्वोत्कृष्ट और सिद्धिप्रद है ऐसा क्रियाविश्वासी लोग मानते हैं, किन्तु उनकी ऐसी एकान्त मान्यता शास्त्रविरुद्ध है ॥ ३ ॥

ज्ञानिने सर्वपापानि दुःखं नैवाप्रदेहिने ।
कियन्तः प्रवदन्त्येव तेऽपिसत्यातिरस्कृता ॥४॥

भावार्थ—हे मुनि ! ज्ञानी मनुष्य के लिये ही पाप है अज्ञानी के लिये कोई पापजन्य दुःख नहीं है ऐसा मानने वाले भी सत्य से तिरस्कृत हैं ॥ ४ ॥

कियन्तो दम्भमापन्नाः स्वीयज्ञानस्य गौतम ।
ज्ञानमेवास्ति सर्वस्वं मन्वते तेऽपि दुर्धियः ॥५॥

भावार्थ—हे गौतम ! अपने ज्ञान का झूठा घमण्ड करने वाले ज्ञानी का ही सब कुछ मानकर निष्क्रिय रहने वाले लोग भी बुद्धि रहित हैं ॥ ५ ॥

दैववादात्परो वादोनैवास्तीति महीतले ।
त उद्योगं न मन्वाना जडीभूताः महामुने ॥६॥

भावार्थ—हे महामुने । भाग्य से परे कुछ भी नहीं है ऐसा कहते हुए दैववाद को मानने वाले लोग पृथ्वी पर जड़ीभूत रहते हैं ॥ ६ ॥

कर्मवादं तिरस्कृत्य यदुद्योगं प्रकुर्वते ।
तेऽपि सन्मार्गतो भ्रष्टाःलभन्ते न सुख क्वचित् ॥७॥

भावार्थ—हे मुनि ! बहुत से कर्मवाद का तिरस्कार करने वाले मनुष्य भी सन्मार्ग से पतित हो कर, कभी सुख नहीं पाते ॥ ७ ॥

एकान्त दुर्हठाः सर्वे सिद्धांतात्पतिताः सदा ।
नैव सौख्य तथा शान्ति लभन्ते चात्र गौतम ॥८॥

भावार्थ—हे गौतम । एकान्तदुराग्रही, सिद्धान्त से पतित लोग सुख और शान्ति को कभी प्राप्त नहीं कर सकते ॥ ८ ॥

उत्थानं बलवीर्यं च समुद्योगो महामुने ।
सर्वाण्येतानि सिद्धीनां कारणानि शुभानिच ॥६॥

भावार्थ—हे महामुने । उत्थान, बलवीर्य और समुद्योग ये सब सिद्धियों के कारण हैं ॥ ६ ॥

ज्ञानं विना क्रिया व्यर्था ज्ञानं व्यर्थं क्रियां विना ।
अतो ज्ञानक्रियाभ्यां वै कार्यसिद्धिर्भवेत्परम् ॥१०॥

भावार्थ—हे मुनि ! ज्ञान के बिना क्रिया व्यर्थ है और क्रिया के बिना ज्ञान व्यर्थ है इस लिए ज्ञान और क्रिया के मेल से ही शीघ्र कार्य सिद्धि होती है ॥ १० ॥

भस्मसात्कुरुते सर्वमग्निरिन्द्रभूतेऽत्र पावकः ।
अतोऽज्ञानिकृतैनैव पापमित्यायसंगतम् ॥११॥

भावार्थ—हे इन्द्र भूति ! अग्नि तो सबको समानता से भस्म करती है । अतः यह कहना कि अज्ञानियों का पाप नहीं लगता, असंगत है ॥ ११ ॥

त्रिविधं यज्ञ मंज्ञानं, शुभं शुद्धं तथाऽशुभम् ।
क्रमशश्च फलं ज्ञेयं यथार्थं च प्रियम्बद ॥१२॥

भावार्थ—हे प्रियंवद ! शुभ शुद्ध और अशुभ भेद से यज्ञ तीन प्रकार के हैं । इनका फल भी नामानुसार क्रम से होता है ॥ १२ ॥

भाविकालाय सद्बुद्धे ! पुण्यकर्मादिसेवनम् ।
शुभो यज्ञः स एव स्यात्स्वर्गादिः फलसाधनः ॥१३॥

भावार्थ हे सद्बुद्धि ! भाविकाल के लिये पुण्य कर्म का सेवन करना शुभ यज्ञ कहलाता है । यह यज्ञ स्वर्ग आदि के फल का साधन है ॥ १३ ॥

ज्ञानध्यानतपोभिर्यत् क्रियते कर्ममोचनम् ।
तदेवंशुद्धयज्ञः स्यात्सर्वमुक्तिप्रदायकः ॥१४॥

भावार्थ—हे मुनि । ज्ञान, ध्यान और तप द्वारा जो कर्मों का नाश किया जाता है इसे ही मुक्ति प्रदायक शुद्धयज्ञ कहते हैं ॥ १४ ॥

पावके जीवहिंसादेः विधानं चाशुभं मुने ।
य इमं कुरुते यज्ञं दुःखमाप्नोत्यसंशयः ॥१५॥

भावार्थ—हे मुनि । जीवहिंसा के विधान से युक्त जो धर्म के नाम पर अग्नियज्ञ करते हैं, वे दुःख को प्राप्त होते हैं ॥ १५ ॥

धर्मार्थे ये पशून् हत्वा हिंसायज्ञं प्रकुर्वते ।
दुर्धियस्ते पतिष्यन्ति, भीषणे रौरवेऽनघ ॥१६॥

भावार्थ—हे अनघ । जो धर्म के नाम पर पशुओं की हत्या करके हिंसा यज्ञ करते हैं वे मूर्ख भयानक नरक में जायेंगे ॥ १६॥

सर्वे पापफलं लोकाः भुञ्जते स्वेन कर्मणा ।
न किञ्चद्दीयते पापं केनचिन्नोपनीयते ॥१७॥

भावार्थ—हे मुनि ! सब लोग अपने किये पापों का फल भोगते हैं, किसी को किसी का पाप न दिया जाता है और न लिया जाता है ॥ १७ ॥

कर्मणा ब्राह्मणो मद्र ! क्षत्रियश्चैव कर्मणा ।
कर्मणा वैश्य संज्ञा वा शूद्रश्चापि स्वकर्मणा ॥१८॥

भावार्थ—हे मद्र कर्म से ही ब्राह्मण क्षत्रिय वैश्य और शूद्र होता है ॥ १८ ॥

एक रूपेण संभूताः जन्मना सर्वजातयः ।
ब्राह्मणे क्षत्रिये वैश्ये शूद्र नो जन्मकारणम् ॥१६॥

भावार्थ—हे मुनि ! सम्पूर्ण जातियों का जन्म एक रूप में ही होता है । अतः ब्राह्मण क्षत्रिय वैश्य और शूद्र में जन्म कारण नहीं है ॥ १६ ॥

निर्मलो निश्शङ्कः शान्तो निश्चलो निर्भयस्तथा ।
सत्यवक्ता विशुद्धात्मा ब्राह्मण' सच गौतम ॥२ ॥

भावार्थ—हे गौतम ! निर्मल निश्शङ्क, शान्त निश्चल निर्भय सत्यवक्ता तथा शुद्धात्मा पुरुष ही ब्राह्मण होता है ॥ २० ॥

सर्वजीवेषु लोकऽस्मिन्, यस्समोनिर्ममः सदा ।
सर्वपापपरि यक्त स उक्तो ब्राह्मणो मुन ॥२१॥

भावार्थ—हे मुनि ! सब जीवों में समभाव रखने वाला निर्मोह सब पापों का त्यागी ही ब्राह्मण कहलाता है ॥ २१ ॥

स्वार्थिनो ब्राह्मणाः वत्स ! पतन्ति पातयन्ति च ।
अतस्तेभ्योऽति दूरत्वमिन्द्रभूते ! सुखावहम् ॥२२॥

भावार्थ—हे इन्द्र भूति । स्वार्थी ब्राह्मण स्वयं तो पतित होते ही हैं पर वे दूसरे का पतन भी कर देते हैं, अत उन से दूर रहना ही सुखप्रद है ॥ २२ ॥

न्यायनीत्या य आत्मानं परञ्चैवाभिरक्षति ।
क्षत्रियः सच मद्बुद्धे ! मन्यते मम शासने ॥२३॥

भावार्थ – हे मद्बुद्धि ! जो न्यायनीति से अपनी और दूसरों की रक्षा करता है, यही मेरे शासन मे क्षत्रिय माना जाता है ॥ २३ ॥

अधीनान्ये न रक्षन्ति, क्षत्रिय मन्यते स्वयम् ।
निर्मलं ते स्वकं धर्मं दूषयन्ति महामुने ॥ २४॥

भावार्थ—हे महामुने । जो अधीन लोगों की तो रक्षा करते नहीं और अपने आप को क्षत्रिय मानते हैं वे अपने निर्मल क्षात्र धर्म को दूषित करते हैं ॥ २४ ॥

राष्ट्ररक्षा तथा सेवा श्रद्धया कुरुते सदा ।
सराजा राजते विद्वन् सवीर्यःसर्वसौख्यदः ॥२५॥

भावार्थ – हे विद्वन् ! जो राष्ट्ररक्षा तथा राष्ट्र सेवा में श्रद्धा पूर्वक तत्पर रहता है वही बलवान् सब को सुख देने वाला राजा होता है ॥ २५ ॥

मनो भूमा समाधाय सद्बीजं शुभकर्मभिम् ।
विन्दत परमार्थान्नं स वैश्य सर्वत शुभ ॥२६॥

भावार्थ—हे मुनि ! मनरूपी भूमि में सत्कर्म से रूप हुए सद् बीजों को बोकर जो परमार्थ रूप अन्न उत्पन्न करता वही श्रेष्ठ वैश्य है ॥ २६ ॥

शुभकर्माणि संगृह्य लोकत्राणमिच्छति ।
निःस्वार्थभावनापूर्णः सद्वैश्यः स च गौतम ॥२७॥

भावार्थ—हे गौतम ! शुभ कर्मों का संग्रह करके जो लोक के समस्त प्राणों की रक्षा करता है वह निस्वार्थ भावनापूर्ण सद्वैश्य कहलाता है ॥ २७ ॥

इन्द्रभूते मदादिष्टात्सत्यमार्गात् बहिर्गत ।
सनीचो नीचकर्मा वा शूद्र संज्ञति धारकः ॥२८॥

भावार्थ—हे इन्द्रभूते ! जो मेरे सत्य उपदिष्ट मार्ग से विमुख है, वह नीच कर्मा नीच मनुष्य शूद्र संज्ञा को धारण करता है ॥ २८ ॥

मानुषस्वव्रतानां यो यमानां चोप घातकः ।
दुर्नीत पातकाकीर्णः सशूद्रो मुनिसत्तम ॥२९॥

भावार्थ—हे मुनिसत्तम ! जो मानवीय नियमोपनियमों का घात करने वाला दुर्नीत तथा पाप से पूर्ण है वही शूद्र है ॥२९॥

सत्यं सृष्टिमुखं भद्र ! बाहूपनियमव्रते ।
सत्कर्मसंग्रहः कुक्षि श्रद्धाभक्तिः पदौ मतौ ॥३०॥

भावार्थ—हे भद्र । सत्यसृष्टि का मुख है, नियम उपनियम इसकी भुजाएं हैं, सत्कर्म-संग्रह उदर है और श्रद्धा भक्ति चरण हैं ॥ ३० ॥

सर्वाङ्गाधारभूतौ यः पादौ शूद्रंवदेज्जनः ।
अज्ञानी सर्वलोकेऽस्मिन् धर्मज्ञः सच गौतम ॥३१॥

भावार्थ—हे गौतम ! सर्व अङ्ग के आधार भूत दोनों चरणों को, जो शूद्र कहता है, वह धर्म-तत्त्व से अनभिज्ञ और अज्ञानी है ॥ ३१ ॥

ब्रह्मचर्य्यस्य सिद्ध्यर्थं तपः सर्वं विधीयते ।
तपश्चर्येषु सर्वेषु ब्रह्मचर्यं विशिष्यते ॥३२॥

भावार्थ—हे मुनि ! ब्रह्मचर्य की सिद्धि के लिये ही सब तप किये जाते हैं । अत. ब्रह्मचर्य सब तपों में उत्तम तप है ॥ ३२ ॥

भगवानुवाच :—

सम्यक्पूजा तथाऽसम्यक् दुष्पूजा चेति गौतम ।
मत्पूजास्त्रि विधास्तासां व्याख्यानं वच्मि तच्छृणु ॥२३॥

भावार्थ—हे गौतम ! सम्यक्पूजा, असम्यक् पूजा और दुष्पूजा भेद से मेरी पूजा के तीन प्रकार हैं ॥ ३३ ॥

मदादिष्टेन मार्गेण जीवनाधारवर्तनम् ।
सम्यक्पूजा समभेष्ठा कर्ममुक्तिप्रदायिका ॥३४॥

भावार्थ—हे सौम्य ! मेरे उपदिष्ट मार्ग से जीवन को चलाना ही सबसे श्रेष्ठ कर्मों से मुक्त कराने वाली मेरी सम्यक्पूजा है ॥ ३४ ॥

सत्योपदेशमाकर्ण्य मदीयं विश्वबोधकम् ।
तदाचारविहीनत्वमसम्यक्पूजनं मुने ॥३५॥

भावार्थ हे मुनि ! विश्व का बोध कराने वाले मेरे सत्य उपदेश को सुनकर भी उस पर आचरण न करना 'असम्यक्पूजा' है ॥ ३५ ॥

आत्मतत्त्वं परित्यज्य भौतिकद्रव्य सेवनैः ।
मदीयोपासना भद्र ! दुष्पूजेत्यतिदुःखदा ॥३६॥

भावार्थ—हे भद्र ! आत्मतत्त्व को छोड़कर भौतिक द्रव्यों द्वारा मेरी पूजा करना दुःखदायक, दुष्पूजा कहलाती है ॥ ३६ ॥

मत्सम्यक्पूजया वत्स ! गुणस्थानापरोहणम् ।
भवत्येव ततो मुक्तिः प्राप्यते सर्वदेहिभिः ॥३७॥

भावार्थ—हे वत्स ! मेरी 'सम्यक्पूजा' द्वारा गुण स्थान का आरोहण होता है, इस से सम्पूर्ण प्राणी मुक्ति प्राप्त करते हैं ॥३७॥

उत्तमा मध्यमा चैवमधमा हि प्रियंवद ।
तपश्चर्या त्रिधैवैषा विद्यते स्वफलप्रदा ॥३८॥

भावार्थ हे प्रियवद । उत्तमा, मध्यमा और अधमा भेदों से अपने २ फल को देने वाली तपस्या तीन प्रकार की होती है ॥३८॥

आत्मकल्याण लाभाय व्रतोपवासधारणम् ।
स्वेच्छानिरोधनञ्चैव, उत्तमेति परंतपः ॥३९॥

भावार्थ—हे परतप । आत्मकल्याण के लाभार्थ व्रत उपवास आदि को धारण करना और अपनी इच्छा को जीतना ही उत्तम तप है ॥ ३९ ॥

लौकिकभोगसम्प्राप्त्यै क्रियते या तपस्क्रिया ।
अनित्यैश्वर्यसंयुक्ता मध्यमेति महामुने ॥४०॥

भावार्थ—हे महामुने । लौकिक भोगों की प्राप्ति के लिये जो तपस्या की जाती है, वह अनित्य ऐश्वर्य वाली मध्यमा तपस्या है ॥ ४० ॥

आमर्षेण विनाशाय, कस्यचिद् भूरिसम्पदाम् ।
क्रियते या तपश्चर्या साधमेति प्रियवद ॥४१॥

भावार्थ—हे प्रियवद ! क्रोध से दूसरों की सम्पत्ति का नाश करने के लिए जो तपस्या की जाती है, वह 'अधमा' संज्ञा वाली होती है ॥ ४१ ॥

गत मयि मुनिर्वाणं जिनानां दर्शनं मुने ।
दुर्लभं भावि भूलोके, निष्प्रमादो भवेरतः ॥४२॥

भावार्थ—हे मुनि ! मेरे निर्वाणपद पर चले जाने पर जिन दर्शन भूलोक में दुर्लभ हो जावेंगे । अतः तुम निष्प्रमाद होकर रहो ॥ ४२ ॥

बहुकालेषु यातेषु लोकमानवपावना ।
तीर्थङ्करा भविष्यन्ति भूपृष्ठे रूपविग्रहा ॥४३॥

भावार्थ—हे मुनि बहुत काल व्यतीत हो जाने पर लोक को पावन करने वाले तीर्थंकर भगवान भूमि पृष्ठ पर पधारेंगे ॥ ४३ ॥

श्रेणिको नाम मद्भक्तो भाविकाले भविष्यति ।
पद्मनामाभिधानेन प्रथमस्तीर्थङ्करोऽसि ॥४४॥

भावार्थ—हे मुनि ! भाविकाल की चौबीसी में श्रेणिक नाम का मेरा परमभक्त पद्मनाभ नाम का प्रथम तीर्थङ्कर होगा ॥ ४४ ॥

मत्तुल्य स संसारं सन्मार्गे सन्नियोक्ष्यते ।
दर्शयिष्यति कल्याणं शिवं सत्यं च सुन्दरम् ॥४५॥

भावार्थ—हे मुनि ! वह प्रथम पद्मनाभ नामक तीर्थङ्कर मेरे समान ही संसार को सन्मार्ग में लगाएगा तथा सबको सत्य शिव और सुन्दर कल्याण की प्राप्ति कराएगा ॥ ४५ ॥

ॐ शमिति श्रीमत्कविरत्न-उपाध्याय अमरमुनि
विरचितायां श्रीमद्गौतमगीतायां "वर्य
धर्मोन्नयन" पञ्चदशोऽध्यायः ।

)-०-(

षोडशोऽध्याय

गौतम उवाच —

कालस्य सन्ति के भेदा. । का च तस्य व्यवस्थितिः ।
भगवन् ! ब्रूहि तत्सर्वं कृपया मां सविस्तरम् ॥१॥

भावार्थ—हे भगवन ! काल के कितने भेद है, और उसकी व्यवस्था क्या है ? कृपा करके काल का सविस्तार वर्णन मुझे सुनाइये ॥ १ ॥

अनाद्यनन्तकालीनः संसारोऽयसरत्यसौ ।

एतस्मिन् प्रभवस्यैव नानाविधो विपर्यय ॥२॥

भावार्थ– हे मुनि ! यह अनादि अनन्त संसार अनादि काल से चला आ रहा है । इसमें समय २ पर अनेक प्रकार के परिवर्तन होते रहते हैं ॥ २ ॥

विश्वस्यास्य विनिर्माता मेधाविन् ! नास्तिकश्चन ।

आसीदस्ति तथाप्येतद्भविष्यत्येव विष्टपम् ॥३॥

भावार्थ हे मेधावी ! इस संसार का बनाने वाला कोई नहीं है यह पहले था अब है और आगे भी विद्यमान रहेगा ॥३॥

न्यूनाधिक्यादिकं सृष्टौ काले काले च जायते ।

भवत्यस्य प्रभावेण उत्थानं पतनं सदा ॥४॥

भावार्थ – हे गौतम ! समय २ पर संसार में न्यूनाधिकता होती रहती है, जिसके प्रभाव से सदा उत्थान और पतन होता रहता है ॥ ४ ॥

कालचक्रस्य द्वौ भेदौ प्राधान्येन विवर्धितौ ।

प्रथमोत्सर्पिणीकालो द्वितीयश्चावसर्पिणी ॥५॥

भावार्थ हे गौतम ! काल चक्र के मुख्यतया दो भेद हैं प्रथम उत्सर्पिणीकाल और दूसरा अवसर्पिणीकाल है ॥ ५ ॥

दुःखं-दुःख ततो दुःखंदुःखसुखे सुखासुखे।
सुखं सुखसुखे चैते आद्य पडितिमेदकाः ॥६॥

भावार्थ—हे गौतम। प्रथम उत्सर्पिणीकाल के ६ भेद हैं, (१) दुःख दुःख, (२) दुःख, (३) दुःख सुख, (४) सुख सुख (५) सुख (६) सुख सुख ॥ ६ ॥

सुखसुखे द्वितीयस्य सुखं च सुखदुःखकम्।
दुःखंसुखं तथा दुःखं दुःखंदुःखं प्रभेदतः ॥७॥

भावार्थ—हे मुनि। दूसरे अवसर्पिणी काल के ६ भेद हैं (१) सुख सुख, (२) सुख, (३) सुख दुःख, (४) दुःख सुख, (५) दुःख, (६) दुःख दुःख ॥ ७ ॥

आदिमे कालिके भेदयुत्सर्पिण्यांतु गौतम।
आयुषो मानमाख्यातं विशंतिवर्षमम्मितम् ॥ ८ ॥

भावार्थ - हे गौतम। उत्सर्पिणी काल के आदिम भेद अर्थात 'दुःख दुःख' आरे में मनुष्य की आयु कुल बीस वर्ष की होती है ॥ ८ ॥

एकहस्तमितःकायः क्षीणशक्तिबलाः जनाः।
पापपुण्य प्रणाली च नहि तत्रावलम्यते ॥९॥

भावार्थ—हे मुनि। इस आरे में केवल एक हाथ शरीर होता है। उनका शक्ति बल क्षीण होता है, पाप पुण्य की प्रणाली भी उनमें नहीं होती, जो इस आरे में जन्म लेता है ॥ ९ ॥

गुहावासिनः सर्वे मत्स्यकच्छादिभक्षकाः ।
नग्नाभ्रष्टास्तथा मग्नाः महादुःखान्विताः मुने

भावार्थ—हे मुनि ! इस काल के मनुष्य गुफाओं में रहते हैं, मच्छ कच्छादि का भक्षण करते हैं, नग्न रोगी, भग्न चित्त तथा महान दुखी होते हैं ॥ १० ॥

शीत्याधिक्य त्रियामायां दिने तापस्ससमपते ।
खड्गधारासमो वायुः सन्तुनोति प्रतिक्षणम् ॥११॥

भावार्थ—हे मुनि ! इस काल में रात्रि में अधिक सरदी दिन में अधिक गर्मी और तलवार की धार के समान वायु दुःख पहुंचाती है ॥ ११ ॥

एकविंश सहस्रेषु वर्षेषु विगतेषु च ।
प्रविशत्यपर कालः एतावदप्यमुतः ॥१२॥

भावार्थ—हे मुनि ! इस प्रकार महान दुःख के २१ हजार वर्ष बीतने पर दूसरा काल प्रवेश करता है, इसकी स्थिति भी २१ हजार वर्ष की है ॥ १२ ॥

यदारभ्य शुभस्त्वेष काल आरम्भते मुने ।
इतोऽप्य सरसा वृष्टिः सप्तसप्ताह मतिष ॥१३॥

भावार्थ—हे मुनि ! जिस दिन से यह काल आरम्भ होता है उसी दिन से सात सप्ताह तक सरस वृष्टि होती है ॥ १३ ॥

वर्षान्ते सकलाऽनन्ता भवत्यानन्ददायिका ।

मधुरादिरसास्तत्र प्रादुर्यान्ति सुखावहाः ॥१४॥

भावार्थ हे मुनि। सरस वृष्टि होने के अनन्तर सम्पूर्ण पृथ्वी आनन्द दायिनी हो जाती है और उसमे मधुरादि रसों की उत्पत्ति होती है ॥ १४ ॥

सर्ववैरं परित्यज्य व्यामरे तत्र तत्त्ववित् ।

विहाय पिशिताहारं विलाद् वाह्यव्रजन्तिते ॥१५॥

भावार्थ—हे तत्त्वविद्! उस दिन सब लोग आपस के वैर को छोड़कर, मासाहार का परित्याग करके विलों से वाहर आते हैं ॥ १५ ॥

सर्मांशिक क्षमाभावः सर्वत्र परिवर्द्धते ।

किंचित्सुखानुभूतिश्च लसति प्रकृतिःपरा ॥१६॥

भावार्थ—हे मुनि। उन लोगों में आंशिक क्षमाभाव और कुछ सुखों की अनुभूति सर्वत्र वढती है, प्रकृति अति सुन्दर लगती है ॥ १६ ॥

तस्मिनदिने जनाः सर्वे सौख्यभूतिसमुन्नताम् ।

जनयन्ति दशां स्वीयां कष्टानामन्तकारिणीम् ॥१७॥

भावार्थ—हे मुनि। उस दिन सब लोग अपने सुखपूर्ण कष्टों का अन्त करने वाली उन्नत दशा को जन्म देते हैं ॥ १७ ॥

अवसत्र दिने सर्व देव दानव मानवा ।
आचरन्ति निजे गृहे संवत्सर महामहः ॥१८॥

भावार्थ—हे मुनि ! इसी लिये उस दिन देवता दैत्य और मनुष्य सभी मिलकर अपने २ घरों में संवत्सरी महापर्व को मनाते हैं ॥ १८ ॥

उत्सवस्यास्य माहात्म्यं श्रोतुमिच्छाम्यहं प्रभो ।
ज्ञानुकम्पमरं ब्रूहि अज्ञानतिमिरापरम् ॥१६॥

भावार्थ—हे प्रभु ! मैं इस उत्सव के माहात्म्य को सुनना चाहता हूँ, कृपया अज्ञानरूपी अन्धेरे को दूर करने वाले इस महानुत्सव का माहात्म्य कहिये ॥ १६ ॥

आद्यन्तपरिहीनोऽप्ययमुत्सवोऽस्ति महामत ।
नान्य समोऽस्य लोकेऽस्मिन्नमन्दानन्दकः ॥२०॥

भावार्थ हे महामति ! यह उत्सव आदि अन्त से रहित है । इसके समान अतिशय आनन्दप्रद कोई अन्य उत्सव नहीं है ॥ २० ॥

योऽनुष्ठाय शुभाचारमुपास्य निर्मलाशयम् ।
भक्तिभावेन पूतात्मा स याति परमां गतिम् ॥२१॥

भावार्थ—हे मुनि ! जो शुभाचार निर्मल मन पूर्वक भक्ति भाव से पवित्र होकर सम्वत्सरी महापर्व की उपासना करता है वह परम गति को प्राप्त होता है ॥ २१ ॥

वासरेऽस्मिन् नरा भक्त्या महामन्त्रं जपन्ति ये ।
जायन्ते पूर्णकामास्ते सर्वपापविनिर्गताः ॥२२॥

भावार्थ हे मुनि ! इस संवत्सरी के दिन जो मनुष्य नवकार महामन्त्र का भक्तिपूर्वक जप करते हैं उनकी समस्त कामनाएं पूर्ण हो जाती हैं ॥ २२ ॥

काले विधीयते यत्र सम्वत्सर महोत्सवः ।
उत्सर्पिण्याःद्वितीयस्तद् आरकः परिकीर्त्तितः ॥२३॥

भावार्थ - हे मुनि ! जिस काल में सम्वत्सरी महापर्व का विधान हुआ है, वह उत्सर्पिणी का दूसरा आरा होता है ॥ २३ ॥

विग्रहायुर्बलादीनां विकासोऽत्रप्रजायते ।
सप्तहस्त वपुश्चायुः शताब्देपञ्चविंशतिः ॥२४॥

भावार्थ हे मुनि ! इस काल में शरीर, आयुबल आदि का विकास होता है, मनुष्य की आयु एक सौ पच्चीस वर्ष की और सात हाथ का शरीर होता है ॥ २४ ॥

सप्तहस्त मितान्मर्त्ये सीम पञ्चशतं धनुः ।
वयोऽनल्पं तृतीयेऽस्मिन क्रमशोवर्द्धतेतराम् ॥२५॥

भावार्थ—हे भद्र ! तीसरे 'दु ख सुख' काल में मनुष्यों का शरीरमान सात हाथ से लेकर पाच सौ धनुप तक का होता है, इनकी आयु भी दूसरे आरे से अधिक होती है ॥ २५ ॥

अन्ते भागेऽस्य कालस्य जीवानां हितहेतवे ।
तीर्थङ्कर समुत्पाति समेधन्ते धनादयः ॥२६॥

भावार्थ—हे मुनि ! इस काल के अन्तिम भाग में जीवों के कल्याण प्रथम तीर्थङ्कर देव का जन्म होता है और आयुष्य आदि बढ़ने लग जाते हैं ॥ २६ ॥

युग्मैकविंश साहस्र कोडाकोड्यर्णवादृगतम् ।
मानमेतस्य कालस्य दीयमानर्षिवर मुने ॥२७॥

भावार्थ—हे मुनि ! इस काल का दीयमान एक कोडाकोडि सागर में से ब्यालीस हजार वर्ष कम है ॥ २७ ॥

तीर्यतेऽनेन तत्तीर्थं तत्करोति विधानतः ।
तीर्थङ्करो महाभाग ! चतुर्धा संघनायकः ॥२८॥

भावार्थ—हे महाभाग ! जिसके द्वारा पार होते हैं उसे तीर्थ कहते हैं और साधु साध्वी, श्रावक-श्राविका रूप चतुर्विध तीर्थ की स्थापना करने वाले को तीर्थङ्कर कहते हैं ॥ २८ ॥

द्विकोडाकोडवारीश-मिते काले चतुर्थके ।
तीर्थङ्कराः प्रपूर्णास्य भोगभूमिस्त्वेति वै ॥२९॥

भावार्थ—हे मुनि ! दो कोडाकोडि सागरोपम का यह चौथा काल होता है इसमें चौबीसों तीर्थङ्कर भगवानों का निर्वाण हो जाता है तथा भोगभूमि का उदय होता है ॥ २९ ॥

तीर्थकृत्सार्वभौमाश्च वासुदेवाःबलास्तथा ।
प्रतिवासव इत्यत्र त्रिषष्टी पुण्य पूरुषाः ॥३०॥

भावार्थ– हे मुनि ! इस चतुर्थ सुख दुःख काल मे २४ तीर्थङ्कर १२ चक्रवर्ती ६ वासुदेव ६ बलदेव ६ प्रति वासुदेव ये ६३ पुण्य पुरुष होते हैं ॥ ३० ॥

वस्तु जातं प्रयच्छन्ति कल्पवृक्षाः अभीष्टदाः ।
स्वर्लोकमन्तरान्नृणामस्ति नेतरथा गतिः ॥३१॥

भावार्थ हे गौतम । चतुर्थ काल में जब तीर्थङ्कर मुक्त हो जाते हैं तब भोग भूमिज पुरुषों की समस्त इच्छाओं को कल्पवृक्ष पूरा करते हैं, ये भोग भूमिज पुरुष स्वर्गगामी होते हैं ॥ ३१ ॥

ततश्च पञ्चमे काले भोगानां परिबृंहणम् ।
त्रिकोडाकोडवागीशो यावदेषोऽवतिष्ठते ॥३२॥

भावार्थ–हे मुनि । इस के पश्चात पचम "सुख" काल का प्रारम्भ होता है, इसमें भोगों की अधिक २ वृद्धि होती है, यह काल तीन कोड़ाकोड़ सागरोपम होता है ॥ ३२ ॥

वयोवर्चः शरीराणि नुर्यन्ति चरमावधिम् ।
भौतिकोन्त्ये विकासोऽपि कोडाकोडचतुष्टये ॥३३॥

भावार्थ– हे मुनि ! उस छठे "सुख सुख" काल मे मनुष्यों की आयु तेज शरीर तथा भौतिक विकास पराकाष्ठा को प्राप्त होता है यह काल चार कोड़ाकोड़ सागरोपम होता है ॥ ३३ ॥

भूयोऽवसर्पिणी कालो गतेऽस्मिन्नेति गौतम ।
पुं वयोवीर्यदेहानां ह्रासो भवति नित्यशः ॥२४॥

भावार्थ—हे गौतम ! उत्सर्पिणी काल के बीत जाने पर अव सर्पिणी काल आता है इस काल में दिन प्रतिदिन मनुष्यों की आयु शक्ति, देह आदि का ह्रास होता है ॥ २४ ॥

परोत्कर्षे युतं गात्रं वय: पल्योपमत्रयम् ।
परितः सुखसद्वृष्टिः प्रथमेऽजन्म मैथुनम् ॥२५॥

भावार्थ—हे गौतम ! अवसर्पिणी काल के प्रथम "सुख सुख" आरे में मनुष्यों की आयु तीन पल्य तथा परमोत्कृष्ट शरीर, और उनके सब ओर सुख ही सुख होता है इस काल में भाई बहन के जोड़े से जन्म होता है ॥ २५ ॥

द्विपल्योपममायुष्यं पूर्वतः स्तोक विग्रहः ।
दिनद्वयं व्यतीतेऽस्मिन् भोक्तुमिच्छाद्वितीयके ॥२६॥

भावार्थ—हे गौतम ! दूसरे "सुख" आरे में पूर्व आरे की अपेक्षा लघुशरीर और दो पल्योपम का आयुष्य होता है इस आरे के जीवों को दो दिन के बाद भोजन की इच्छा जागृत होती है ॥ २६ ॥

एक पल्योपमावस्था तृतीये कर्मभूजनि ।
अन्ते तीर्थङ्करस्यर्षे प्रादुर्भूतिर्विजायते ॥२७॥

भावार्थ—हे ऋषि ! तीसरे "सुख दुःख" काल में मनुष्यों का एक पल्योपम का वय होता है, इसके अन्त में कर्मभूमि के जन्म के साथ २ तीर्थङ्कर देव का जन्म होता है ॥ २७ ॥

पञ्चशतधनुर्गात्रं क्रोडपूर्ववयस्तथा ।
तीर्थङ्करसमाप्तिश्च तुर्ये क्रमशो मुने ॥३८॥

भावार्थ—हे मुनि । चौथे "दुःख सुख" काल में क्रोड पूर्व की आयु तथा उत्कृष्ट ५०० धनुष का शरीर होता है श्री तीर्थङ्कर भगवान इसी काल में निर्वाण प्राप्त करते हैं ॥ ३८ ॥

तत्काले पञ्चमे प्रोक्तं सप्तपाणिमितं वपुः ।
आयुष्यं च शताङ्काग्रे वर्षाणां पञ्चविंशतिः ॥३९॥

भावार्थ—हे गौतम । उस पञ्चम काल में सात हाथ का शरीर और मनुष्य की १२५ वर्ष की उत्कृष्ट आयु होती है ॥ ३९ ॥

एतत्कालप्रवृत्तिं मां दर्शयन्तु जगद्गुरो ।
ईहा मनोभवा देव ! वाचालयति मानसम् ॥४०॥

भावार्थ—जगद्गुरु । पञ्चम काल की प्रवृत्ति को सुनने के लिये मेरी मनोभूत इच्छा मुझे लालायित कर रही है, अतः इस काल का दिग्दर्शन कराने की कृपा कीजिये ॥ ४० ॥

प्रत्यवादीन्महाप्राज्ञो वदन्तं गौतमं मुनिम् ।
व्याहरामि समासेन शृणु तत्सावधानतः ॥४१॥

भावार्थ—गौतम के प्रश्न को सुन कर भगवान् बोले, हे मुनि पञ्चमकाल का वर्णन सावधानता पूर्वक श्रवण करो ॥ ४१ ॥

धर्मधीमानवस्तत्र कषायैर्मोहमेष्यति ।
मर्यादारहितो मर्त्य पापतापेन तप्स्यति ॥४२॥

भावार्थ—हे गौतम! पञ्चमकाल में धर्मधी मनुष्य कषायवश मोह को प्राप्त होंगे तथा मर्यादाविहीन मनुष्य पाप ताप से तपेंगे ॥४२॥

दुर्धिय सुदुराचाराः हिंसाविक्रूरवृत्तयः ।
मोहरागसमाविष्टा परुषाः पुरुषा मुने ॥४३॥

भावार्थ—हे मुनि! पञ्चम काल में मनुष्य दुर्बुद्धि दुराचारी और हिंसाविक्रूर वृत्ति वाले होंगे तथा मोही रागी और कठोर होंगे ॥ ४३ ॥

ग्रामा श्मशानसमास्तत्र नियमाः प्रेतलोकवत् ।
भविष्यन्ति महीपाला कीनाशा इव गौतम ॥४४॥

भावार्थ—हे गौतम! पञ्चमकाल के ग्राम श्मशान समान होंगे नगर प्रेतलोक के तुल्य और राजा लोग यमराज के समान होंगे ॥ ४४ ॥

भूसुतो निग्रहिष्यन्ति मत्ता निजानुजीविन । –
अनुचरा इवा मूढा जनतातापदायका ॥४५॥

भावार्थ—हे मुनि! राजा लोग अपने अनुयायियों को ही बन्दी बनायेंगे मूढ़ अधिकारी वर्ग स्वयं ही जनता को सन्ताप देंगे ॥ ४५ ॥

निर्बलाद् बलापन्ना मत्स्यन्यायेन सर्वथा ।
भक्षयिष्यन्ति निःशेषं निर्दयाः क्रूरमानसाः ॥४६॥

भावार्थ—हे गौतम ! निर्दय क्रूरहृदय लोग, निर्बलों को मगरमच्छ की भांति निगलेंगे ॥ ४६ ॥

तस्करास्तस्करत्वेन करत्वेन च भूभृतः ।
पास्यन्ति च प्रजारक्तमुत्कोचेनाधिकारिणः ॥४७॥

भावार्थ - हे मुनि ! चोर चोरी से, राजा टैक्स से, और अधिकारी लोग रिश्वत से प्रजा का खून चूसेंगे ॥ ४७ ॥

अवज्ञास्यन्ति पुत्रास्तु पितरौ वटवो गुरून् ।
वध्वश्च सर्पिणी तुल्याः श्वश्रः कालक्षपा इव ॥४८॥

भावार्थ—हे मुनि ! पुत्र, माता पिता का, शिष्य गुरुजनों का अपमान करेंगे, सर्पिणीतुल्य स्त्रिया और सासू काल-रात्रि समान होंगी ॥ ४८ ॥

किं बहुना कुलीनाश्च नार्यो दुःशीलदूषिताः ।
एवमेवक्षयः प्राज्ञ ! धर्मतरोर्भविष्यति ॥४९॥

भावार्थ—हे प्राज्ञ ! अधिक क्या कहूँ कुलीन स्त्रिया भी पद हो जावेंगी। इस प्रकार धर्म-वृक्ष का क्षय होगा ॥ ४९ ॥

कश्चित्संधारयिष्यन्ति धर्मवृक्षस्य सेचनम्। -
तेषां छायामधिष्ठाय शासनं मे चलिष्यति ॥५०॥

भावार्थ—हे मुनि। इस काल में भी कुछ लोग धर्मवृक्ष का सिंचन करेंगे उन्हीं की छाया में बैठकर मेरा शासन चलेगा ॥५

षष्ठे नूनं पराकाष्ठा ह्रासस्य मति धर्मयोः।
हस्तमात्रं तु पु गात्रं विंशतिवर्षकं वयः ॥५१॥

भावार्थ– हे मुनि। छठे दुःख दुःख काल में, बुद्धि और धर्म के ह्रास की पराकाष्ठा होगी मनुष्य का शरीर एक हाथ का होगा और आयु बीस वर्ष की होगी ॥ ५१ ॥

अभक्ष्यभक्षका जीवा अधस्तिर्यग्गामिनः।
विचाराचारहीनाश्च भविष्यन्ति मनावपि ॥ ५२॥

भावार्थ– हे गौतम। वे लोग मांसादि अभक्ष्य भक्षी होंगे आचार विचार से हीन होंगे तथा मरकर नरक और तिर्यञ्च गति में जायेंगे ॥ ५२ ॥

उत्सर्पिणीयकालस्य सस्थितिया विनिश्चिता।
तद्वैपरीत्यभावेन समयस्यास्य सर्वता ॥५३॥

भावार्थ—हे सौम्य! उत्सर्पिणी काल के छः आरों की जो स्थिति कही है। ठीक उसके विपरीत अवसर्पिणी काल के छहों आरों की स्थिति भी होती है ॥ ५३ ॥

अबाधःकालचक्रोऽयं भ्रमत्यत्र निरन्तरम् ।
कस्याञ्चिदप्यवस्थायां कचिन्नाभ्येति विश्रमम् ॥५४॥

भावार्थ—हे मुनि । यह अबाध कालचक्र निरन्तर चलता रहता है, किसी भी अवस्था में किञ्चिन्मात्र भी विश्राम नहीं लेता ॥ ५४ ॥

ॐ शमिति श्रीमत्कविरत्न उपाध्याय अमृत मुनि विरचितायाँ श्रीमद्गौतमगीताया "कालयोगो नाम" षोडशोऽध्याय

)-०-(

—सप्तदशोऽध्यायः—

गौतम उवाच :—

> स्याद्वादस्य शुभांव्याख्यां, श्रोतुमिच्छामि सन्मते।
> तस्यार्थविवेचनं मम ब्रूहि संसृतिहेतवे॥ १॥

भावार्थ हे भगवन्! स्याद्वाद की शुभ व्याख्या और उसका विवेचन सृष्टि के हित के लिये मुझे सुनने की कृपा कीजिये॥ १॥

स्याद्वादोऽभेद्यदुर्गोऽयं विज्ञानात्मा हि गौतम ।
योऽस्य तत्त्वं विजानाति, न्यायविज्ञः स मन्यते ॥२॥

भावार्थ—हे गौतम ! यह स्याद्वाद-रूपी अभेद्य दुर्ग, विज्ञान से भरपूर है, जो इसके तत्त्व को जानता है, वही सच्चा न्याय-विज्ञ होता है ॥ २ ॥

अस्यास्तित्वं निराकर्त्तुमचेष्टन्त मुधाबुधाः ।
परं मग्नाःस्वयंतेऽसौ जागर्त्यद्यापि भूतले ॥३॥

भावार्थ—हे मुनि ! इस 'स्याद्वाद' का खण्डन करने के लिये अनेक पंडितों ने व्यर्थ परिश्रम किया, परन्तु वे तो विचारे समाप्त हो गए और यह अखण्ड स्याद्वाद सिद्धान्त आज भी उसी प्रकार भूतल में जागरूक हैं ॥ ३ ॥

स्यादपेक्षणे चात्र वादस्तु प्रविवेचने ।
सापेक्षं वचनं सम्यक् स्याद्वाद परिभाषणम् ॥४॥

भावार्थ—हे गौतम ! 'स्यात' का अर्थ अपेक्षा और 'वाद' का अर्थ विवेचन होता है, इस प्रकार सापेक्ष वचनों का सम्यक भाषण करना ही 'स्याद्वाद' की परिभाषा है ॥ ४ ॥

एकस्यैव पदार्थस्य भिन्नभिन्नदृशा भृशम् ।
विवेचनञ्च विश्लेषः सापेक्षवाद उच्यते ॥५॥

भावार्थ—हे मुनि ! एक ही पदार्थ का भिन्न २ दृष्टियों से विवेचन तथा विश्लेषण करना ही सापेक्षवाद कहलाता है ॥ ५ ॥

पितृव्यम पिता पुत्रो भ्राता मातुल एव च ।
अपेक्षया यथैकोना भिन्नो भिन्नोऽवबुध्यते ॥६॥

भावार्थ—हे मुनि ! जैसे एक ही मनुष्य चाचा पिता पुत्र भाई मामा आदि रूपों की अपेक्षा से भिन्न २ प्रकार से जाना जाता है ॥ ६ ॥

तथैवानेकदृष्ट्या तु नित्यानित्यत्वरोपणम् ।
घटादौ वस्तु संघाते स्याद्वाद परिदर्शनम् ॥७॥

भावार्थ—हे मुनि ! इसी प्रकार घटादि वस्तुओं में नित्य अनित्यत्व का आरोपण करके अनेक दृष्टियों से उनका ज्ञान प्राप्त करना 'स्याद्वाद' दर्शन है ॥ ७ ॥

मुने द्रव्यस्य कस्यापि सदसत्ता विनिर्णयः ।
अनेकान्ततया यत्र सोनेकान्तोवमन्यते ॥८॥

भावार्थ—हे मुनि ! किसी भी द्रव्य की 'सत्' और 'असत्' सत्ता का निर्णय जिस में अनेकान्त रूप से हो उसी को 'अनेकान्तवाद' कहते हैं यह स्याद्वाद का नामान्तर है ॥ ८ ॥

अनन्तद्रव्यसन्दोहः जीवा जीवात्मको जगत् ।
जीवोऽजीवतान्नेति तथाऽजीवो न जीवताम् ॥९॥

भावार्थ—हे मद्र ! यह जगत् जीव तथा अजीव रूप अनन्त द्रव्यों का समुदाय है इस में जीव कभी अजीव नहीं होता और अजीव कभी जीव नहीं होता है ॥ ९ ॥

पदार्थाःजगतः सर्वे ध्रौव्योत्पादव्ययाभिधैः ।
धर्मैस्त्रिभिः समाजुष्टा विलोक्यन्ते स्वभावतः ॥१०॥

भावार्थ हे मुनि। संसार के सब पदार्थों में उत्पाद, ध्रौव्य और व्यय तीन धर्म स्वभाव से ही दीखते हैं ॥ १० ॥

हिरण्याज्जायते भद्र ! कटके कुण्डलानि च ।
ध्रौव्यद्रव्यदशा सैव, व्ययोत्पादद्विरूपयोः ॥११॥

भावार्थ- हे मुनि। सोने की डली के कटक और कुण्डल बनवाए, इस दशा में, सोना तो सोना ही रहा परन्तु डली के रूप का व्यय और कटक तथा कुण्डलों का उत्पाद हुआ इस प्रकार यहा पर उत्पाद, व्यय और ध्रौव्य ये तीनों लक्षण घटते हैं ॥११॥

ध्रौव्योत्पादव्ययव्याप्तं यत्तद् द्रव्यं सतांवर ।
त्रिकालेऽपितदस्तित्वं नित्यत्वेनाभिवर्त्तते ॥१२॥

भावार्थ—हे सतावर। उत्पाद, व्यय और ध्रौव्य इन तीन गुणों से युक्त वस्तु द्रव्य कहलाता है इस द्रव्य का अस्तित्व तीनों कालों मे नित्य रहता है ॥ १२ ॥

द्रव्यापेक्षणतः सर्वे पदार्था अविनाशिनः ।
परम्पर्यायतस्ते हि भासन्ते क्षणिकाः मुने॥१३॥

भावार्थ—हे मुनि। द्रव्य की, अपेक्षा से सब पदार्थ अविनाशी हैं. परन्त पर्याय से वे ही द्रव्य क्षणिक दीख पड़ते हैं ॥ १३ ॥

एवङ्कारं पदार्थानामनेकान्ततया स्फुटम् ।
नित्यानित्यत्व रूपस्य स्याद्वादविवेचनम् ॥१४॥

भावार्थ—हे मुनि ! इस प्रकार नित्य अनित्य रूप से पदार्थ का अनेकान्त दृष्टि से स्पष्ट विवेचन करना ही 'स्याद्वाद' अथवा अनेकान्तवाद कहलाता है ॥ १४ ॥

स्याद्वादं मनुते यस्तु संशयवादरूपिणम् ।
विचिकित्साऽन्धतावन्ये पङ्के गौरिव सीदति ॥१५॥

भावार्थ—हे मुनि ! जो मनुष्य स्याद्वाद को संशयवाद कहता है वह सन्देह से उत्पन्न हुए अन्धकार के कीचड़ में निर्बल गौ के समान फंसकर दुखी होता है ॥ १५ ॥

अधुना सप्तभङ्गीयं वस्तुतत्त्वनिरूपिका ।
स्याद्वादमयी चात्र भाष्यते शृणु गौतम ॥१६॥

भावार्थ—हे गौतम ! अब मैं वस्तुतत्त्व का यथार्थ निरूपण करने वाले स्याद्वाद मय सप्त भङ्गी न्याय का निरूपण करता हूँ इसे तुम ध्यान पूर्वक सुनो ॥ १६ ॥

द्रव्यस्यैकस्वरूपेण स्वकीयत्वेन गौतम ।
कथञ्चिदस्ति भावत्वं स्यादस्तीति समुच्यते ॥१७॥

भावार्थ—हे गौतम ! कथञ्चित् रूप से द्रव्य का स्वस्वरूपीय अस्तित्व अथवा "स्यादस्ति" नामक प्रथम रूप होता है ॥ १७ ॥

यथा घटो घटत्वेन स्वसत्त्वेनस्वरूपतः ।
दृश्यतेऽस्तित्वकालेन स्यादस्तिघट उच्यते ॥१८॥

भावार्थ - हे गौतम ! जिस प्रकार घट (घड़ा) घटत्व के स्वरूप से घड़ा दीख पड़ता है तब उसे स्यादस्तिघट अर्थात् घड़ा है, कहते हैं, क्योंकि घड़ा अपने रूप स्थान आदि की अपेक्षा से ही घड़ा है ॥ १८ ॥

परद्रव्यास्ति भावेन, पदार्थोऽभावनिश्चयः ।
अपेक्षयाऽत्र नास्तित्वं स्यान्नास्तीति समुच्यते ॥१९॥

भावार्थ—हे गौतम ! अन्य द्रव्य के अस्तित्त्व से जब पदार्थ का अभाव होता है उस समय पर द्रव्य की अपेक्षा से नास्तित्त्व गुणयुक्त स्यान्नास्ति नामक दूसरा रूप होता है ॥ १९ ॥

यथा यत्र घटाभावः परद्रव्याद्यपेक्षया ।
तत्स्यान्नास्तिघटश्चेत्थं वचोनास्तित्त्व संयुतम् ॥२०॥

भावार्थ - हे मुनि ! जब पट आदि अन्य द्रव्य की अपेक्षा से घट का अभाव होता है, तब नास्तित्त्व गुण युक्त स्यान्नास्तिघट अर्थात् घड़ा नहीं है—यह वचन होता है ॥ २० ॥

अस्ति नास्तित्वरूपेण क्रमशो द्रव्यमान्यता ।
स्यादस्ति नास्ति वाक्येन तत्रैवं मन्यते मुने ॥२१॥

भावार्थ—हे मुनि ! द्रव्य अपनी अपेक्षा से है और परद्रव्य की अपेक्षा से नहीं है, इन दोनों रूपों की क्रमश मान्यता "स्यादस्तिनास्ति" नामक तीसरा रूप होता है ॥ २१ ॥

यथा स्वास्तित्वरूपेण घटोऽस्तीत्यपि गौतम ।
नास्तित्वं चापि तत्रैव परद्रव्याद्यपेक्षया ॥२२॥

भावार्थ—हे गौतम ! जिस प्रकार अपनी अपेक्षा से घड़ा है और परद्रव्य पट कट आदि की अपेक्षा से नहीं इस दशा में "स्यादस्ति नास्तिघट" यह रूप होगा अर्थात् कथञ्चित् घट है और कथञ्चित् नहीं भी है ॥ २२ ॥

द्रव्यास्तित्व नास्तित्वौ युगपद् द्वौ क्रमादृते ।
अवाच्यौ तत्र मेधाविन् ! स्यादवक्तव्य उच्यते ॥२३॥

भावार्थ—हे मेधाविन् ! द्रव्य का अस्तित्व तथा नास्तित्व साथ क्रम के बिना एक दम नहीं कहा जा सकता अतः वहां पर 'स्याद् अवक्तव्य' नामक चौथा रूप होता है ॥ २३ ॥

यथा घटोऽस्ति सावस्तेनास्तित्वञ्चापि तत्क्षणे ।
अवाच्यमेकशब्देन तथावक्तव्य उत्तरम् ॥२४॥

भावार्थ हे गौतम ! घड़ा का अस्ति नास्ति साथ एक समय में एक शब्द के द्वारा नहीं कहा जा सकता, अतः इस अवस्था में स्याद् अवक्तव्य घट ऐसा ही कथन उपयुक्त है ॥ २४ ॥

अनिर्वाच्य स्वरूपेऽपि द्रव्यास्तित्वं महामते ।
तत्र स्यादस्त्यवक्तव्य इत्येमान्या प्रमाणता ॥२५॥

भावार्थ—हे महामते ! अवक्तव्य होने पर भी द्रव्य का अस्तित्व है, इस दशा में "स्यादस्ति अवक्तव्य" यह पांचवां वचन ही प्रमाण सम्मत है ॥ २५ ॥

अवाच्यत्वप्रकारेऽपि घटास्तित्वं मुने ।
तदा स्यादस्त्यवक्तव्यः घटश्चेति प्रभण्यते ॥२६॥

भावार्थ—हे मुनि । अकथनीय होने पर भी घडे का अस्तित्व है इस अवस्था मे "स्यादस्ति अवक्तव्य घट" अर्थात कथञ्चित् अवक्तव्य घडा है इस प्रकार का वचन बोलना चाहिये ॥ २६॥

अनिर्वक्तव्य योगेऽपि द्रव्य नास्तित्व योजनम् ।
तत्र स्यान्नास्त्यवक्तव्यः मन्यतेमुनिपुङ्गव ॥२७॥

भावार्थ—हे मुनिपुङ्गव । कथञ्चित अवक्तव्य द्रव्य अन्य पदार्थों की अपेक्षा से नहीं है, इस दशा में "स्यान्नास्ति अवक्तव्य। यह छटा रूप होता है ॥ २७ ॥

यथाऽनिर्वाच्यतत्वेऽत्र घटो नास्तित्वसंयुतः ।
अतःस्यान्नास्त्यवक्तव्य घटः सौम्य ! समुच्यते ॥२८॥

भावार्थ—हे सौम्य । कथञ्चित् अवक्तव्य होने पर दूसरे पदार्थों की अपेक्षा से घड़ा नहीं है, इस अवस्था "स्यान्नास्ति अवक्तव्यघट" ऐसा वचन कहना उचित है ॥ २८ ॥

अस्ति नास्ति समुक्तेषु द्रव्येष्ववाच्यता मुने ।
स्यादस्तिनास्त्यवक्तव्यः युक्तियुक्तोऽयमुच्यते ॥२९॥

भावार्थ—हे मुनि । कथञ्चित द्रव्य अपेक्षा से है तथा पर द्रव्य की अपेक्षा से नहीं है, इस दशा में रहते हुए भी अवक्तव्य है, तब यहा पर "स्यादस्ति नास्ति अवक्तव्य" ऐसा सातवा रूप होता है ॥ २९ ॥

यथा घटोस्ति नास्तित्वे सत्य वाच्य इत्यपि ।
स्यादस्ति नास्त्य वाच्य घटस्तत्राव लभ्यते ॥२०॥

भावार्थ—हे मुनि! यथा कथञ्चित है कथञ्चित् नहीं है इस रूप में अवक्तव्य है इस दशा में स्यादस्ति नास्ति अवक्तव्य घट ऐसा रूप होता है ॥ २ ॥

सकला देशतया चापि विकलादेशतस्तथा ।
सप्तभङ्गीद्विधा प्रोक्ता स्याद्वादस्य निरूपिका ॥२१॥

भावार्थ—हे मुनि! सकलादेश तथा विकलादेश इन दो भेदों से स्याद्वाद का निरूपण करने वाली सप्तभङ्गी दो प्रकार की है ॥ २१ ॥

प्रमाण वाक्यया चाद्या द्वितीयानय वाक्यगा ।
पूर्णापूर्णस्य बोधेन सार्थकं क्रमशो द्वयो ॥२२॥

भावार्थ हे मुनि! प्रमाण वाक्य रूपी सकलादेश तथा नय वाक्य रूपी विकलादेश होती है प्रमाण वाक्य पूर्णता से बोध कराते हैं तथा नय वाक्य अपूर्ण अर्थात् एक देश से बोध कराते हैं ॥ २२ ॥

आत्माऽनित्योऽविनाशित्वात् सदाऽव्यक्तो महामुने ।
परिवृत्ति परतस्य विविधा ह्यनुभूयते ॥२३॥

भावार्थ—हे महामुनि! अविनाशी होने से यह आत्मा नित्य अव्यक्त है परन्तु नाना [illegible]
प्रकार से दीखता है ॥

पशुरूपे कदाचित्स कदापि नरदेहभृत् ।
विहगस्य दशायांतु कीदृशं परिवर्त्तनम् ॥३४॥

भावार्थ—हे मुनि ! कभी तो यह आत्मा पशुरूप धारण करती है कभी मनुष्य रूप तथा कभी पक्षी रूप धारण करती है, कैसा विचित्र परिवर्तन है ॥ ३४ ॥

एतच्च सर्वतो मान्यमात्मा शरीरतः पृथक् ।
नवनीते यथा सर्पिः परमेकान्ततो नहि ॥३५॥

भावार्थ हे मुनि । इस बात को सब मानते हैं कि आत्मा शरीर से पृथक् है, परन्तु यह बात भी हठपूर्वक नहीं कहनी चाहिये, क्योंकि जब शरीर से आत्मा का सम्बन्ध है फिर आत्मा को संसार दशा में पृथक् कैसे कहा जा सकता है ॥ ३५ ॥

अस्य देहस्य संघातात् आत्मापि प्रविदूयते ।
इतरथाचेत् कथङ्कारमात्मनितत्र वेदना ॥३६॥

भावार्थ—हे मुनि । यदि आत्मा संसार दशा में शरीर से पृथक् होती तो शरीर को कष्ट होने पर आत्मा को कष्ट न होता परन्तु शरीर को कष्ट होने पर आत्मा को कष्ट होता है, इस से आत्मा शरीर से पृथक होने पर भी संसार-दशा में पृथक् नहीं है ॥ ३६ ॥

आत्मा भिन्नो ह्यतो देहात् स्यादभिन्नः कदापि च ।
सर्वथा भिन्नतोक्तिस्तु न युक्ता संसृतौ मुने ॥३७॥

भावार्थ- हे मुनि । आत्मा शरीर से भिन्न भी है और अभिन्न भी है, अतः सर्वथा भिन्न अथवा अभिन्न पक्ष का हठ तानना ठीक नहीं ॥ ३७ ॥

द्रव्यस्य कस्यचिच्चैवं भिन्न भिन्न दृशाऽपितु ।

सूक्ष्म विवेचनं सम्यक् नयपदनुमुच्यत ॥३८॥

भावार्थ—हे मुनि ! इस प्रकार किसी भी पदार्थ की भिन्न २ दृष्टियों से सूक्ष्म व्याख्या करना नय कहलाता है ॥ ३८ ॥

द्वौभेदौ च नयस्यस्तो निश्चयो व्यावहारिकः ।

निश्चयो निश्चयावोधी द्वितीयो वाह्यबोधकः ॥३९॥

भावार्थ—हे मुनि ! नय निश्चय और व्यवहार भेद से दो प्रकार का है निश्चयनय वस्तुतत्त्व का निश्चयात्मक बोध कराता है और व्यवहार नय बाह्यदशा का बोध कराती है ॥ ३९ ॥

यथाद्यो निर्श्चयस्यात्मा शुद्धबुद्धो निरञ्जन ।

इतर कर्मबद्धस्तु मोहाविद्याविलासित ॥४ ॥

भावार्थ—हे मुनि ! जिस प्रकार निश्चय नय का बोध कराता है कि आत्मा शुद्ध बुद्ध और निरञ्जन है तथा व्यवहार नय यह बोध कराता है, कि आत्मा कर्म बद्ध है और मोह आदि अविद्याओं में फंसा हुआ है ॥ ४० ॥

तन्नयाःसदा धीमन् ! माननीयास्त्वयैव ते ।

यदैकोऽपरसिद्धान्तं न ध्नन्तुमुद्यतो भवेत् ॥४१॥

भावार्थ—हे धीमन् ! इन नयों को तभी मानना चाहिए जब एक नय दूसरे नय का खण्डन न करे ॥ ४१ ॥

यद्यपि नयभेदस्य गणना नात्र दृश्यते ।
तथाऽपि तस्य भेदास्तु सप्त मुख्यतया मुने ॥४२॥

भावार्थ—हे मुनि । यद्यपि, नयों की कोई गिनती नहीं हो सकती, तो भी मुख्यता से नय के ७ भेद कहे जाते हैं ॥ ४२ ॥

नैगमः संग्रहो भद्र ! व्यवहारर्जु सूत्रके ।
शब्दः समभिरूढश्च तथैवं भूत इत्यमी ॥४३॥

भावार्थ—हे भद्र । नैगमनय, सग्रहनय, व्यवहारनय ऋजु-सूत्रनय शब्दनय, समभिरूढनय, और एव भूतनय, ये सात प्रकार के नय होते हैं ॥ ४३ ॥

एको गमो न यस्य स्यान्नैगमः स नयो मुने ।
त्रिकालत्वेन तद्भेदास्त्रयः सन्ति विभागशः ॥४४॥

भावार्थ- हे मुनि ! जो वस्तु को सामान्य और और विशेष, अनेक भेदों से समझाये, उसे नैगमनय कहते हैं, भूत, भविष्य और वर्तमान भेद से इसके तीन भेद हैं ॥ ४४ ॥

वर्त्तमाने तु भूतस्य लक्षणान्नैगमो मतः ।
दिवसश्चास्ति सैवाद्य पार्श्वो यस्मिन् शिव गतः ॥४५॥

भावार्थ—हे मुनि । वर्तमान में भूतकाल की लक्षणा करना भूत नैगमनय हैं, जैसे—आज वही दिवस है जिसमें भगवान् पार्श्वनाथ जी ने मुक्ति प्राप्त की थी ॥ ४५ ॥

भविष्यन्तथथा भूते भविष्यन्नैगमश्रुने ।
तथापक्वत्यमावेऽपि पक्वमोदनमीरणम् ॥४६॥

भावार्थ—हे मुनि ! भूतकाल में भविष्यत्काल की कल्पना करना भविष्यत् नैगमनय है जैसे—भात के भूत में न पक्व होने पर भी 'पक्व' ऐसा कहना होता है ॥ ४६ ॥

भाविनो वर्तमाने तु त्वद्यान्तिम नैगमः ।
अभावे पाकभावस्य पचाम्योदनमित्यपि ॥४७॥

भावार्थ—हे मुनि ! वर्तमान में भविष्यत्काल की कल्पना करना वर्तमान नैगमनय है जैसे—भात के अपक्व होने पर पका कह । कि मैं पकाता हूं ॥ ४७ ॥

समुच्चयेन विज्ञानं द्रव्याणां सग्रहोनय ।
शरीरस्थक एवात्मा भिन्नत्वेऽपि हि वस्तुतः ॥४८॥

भावार्थ—हे मुनि ! समुच्चय से द्रव्यों का सामाजिक ज्ञान सग्रहनय कहलाता है जैसे—शरीरों में आत्मा एकसा होने पर भी भिन्न २ है ॥ ४८ ॥

वशिष्टयेन पदार्थस्य विज्ञानं व्यवहारतः ।
व्यवहारनया म॰ ! यथाच कृष्णपुष्पसिद्ध ॥४६॥

भावार्थ—हे म॰ वस्तु की खास विशेषता को देखकर हो उसका बोध करना व्यवहारनय है । जैसे—काला भौंरा ॥४६॥

द्रव्यमपेक्ष्य पर्यायान लक्षीकरोति नित्यशः।
ऋजुसूत्रनयः प्रोक्तो यथा स्वर्णस्य कुण्डले ॥५०॥

भावार्थ—हे मुनि। द्रव्य की उपेक्षा करके पर्याप्त से ही द्रव्य का सरलता पूर्वक बोध कराने वाली ऋजुसूत्रनय होती है जैसे—कुण्डल कहने से स्वर्ण के कुण्डल ऐसा बोध होता है ॥ ५० ॥

नानापर्याय शब्दानामेकैवार्थविबोधनम्।
शब्द नयस्य कार्यतत् वस्त्रं, वासः पटो यथा ॥५१॥

भावार्थ हे मुनि! नाना शब्द पर्यायों के द्वारा एक अर्थ का बोध करना, शब्दनय कहलाता है जैसे—वस्त्र, कपड़ा, चीर, वसन आदि ॥ ५१ ॥

यत्रार्थे यः समारूढस्तदर्थप्रतिपादनम्।
नयः समभिरूढोऽसौ यथा च कलशादयः ॥५२॥

भावार्थ हेमुनि। जो २ पर्याय को जिस जिस अर्थ में हो उस उस पर्याय को उसी अर्थ मे समझना समभिरूढ़नय है, जैसे—कलश आदि ॥ ५२ ॥

एवं भूत दशा शब्दस्तदेव स्वार्थबोधकः।
व्युत्पत्ति भावना तस्य यदा तस्मिन् प्रवर्त्तते ॥५३॥

भावार्थ—हे मुनि। एव भूत अर्थात ऐसा है, उस दृष्टि से शब्द जब अपने वास्तविक अर्थ में प्रयुक्त होता हुआ, वास्तविक अर्थ का बोध कराए उसे एवं भूतनय कहते हैं ॥५३॥

गौ शब्दो यथा स्वस्य वाचकः स्यात्तदैव हि ।
गमि क्रिया प्रवर्त्तत्व व्युत्पत्त्या गच्छतीति गौः ॥५४॥

भावार्थ—हे मुनि ! गो शब्द अपने वास्तविक अर्थ का तभी बोधक होगा जब वह गमन क्रिया में प्रवृत्त होगा क्योंकि गो शब्द की व्युत्पत्ति यह करती है कि जो चले सो गौ. ॥५४॥

विभज्यवादनयस्यैवं भिन्नभिन्न दृगात्मना ।
वस्तुवेशस्य विस्तीर्णां सीमां पश्यन्ति गौतम ॥५५॥

भावार्थ—हे गौतम ! इस प्रकार नयों को भिन्न २ मार्गों से अवलोकन करने वाले विद्वान इस परम क्षेत्र की विस्तीर्ण सीमा को देखते हैं ॥ ५५ ॥

ॐ इतिश्री श्रीमत्कविरत्न-उपाध्याय अमरमुनि
विरचितायां श्रीमद्गौतमगीतायां 'स्याद्वादयोगो
नाम" सप्तदशोऽध्यायः ।

)०(–

अष्टादशोऽध्याय

भगवानुवाच :—

वच्मि प्रबोधयोगं ते सर्व-सन्देह-नाशनम् ।
यच्छ्रुत्वा परमांशान्ति यास्यन्ति मानवाःमुने ॥१॥

भावार्थ—हे मुनि ! अब मैं उस परमतत्त्व प्रबोधयोग का निरूपण करता हूँ, जो सब सन्देहों का नाश करने वाला है और जिसे सुनकर संसार मे मानव परम शान्ति को प्राप्त करेंगे ॥१॥

सद्बोधं प्राप्य सद्बुद्धे जीवनोद्धारमग्रहः ।
सत्कर्त्तव्यम कर्त्तव्यो लक्ष्यमतन्महोत्तमम् ॥२॥

भावार्थ—हे सद्बुद्धि ! सद्बोध को प्राप्त करके जीवनोद्धार उपाय और सत्कर्त्तव्य पालन करना ही जीवन का परम उत्तम लक्ष्य है ॥ २ ॥

कोऽहं कुतः समभ्येत , क्व यास्यामि किंकृतम् ।
सततपृच्छति सुबोधव्या एते प्रश्ना मुहुर्मुहुः ॥३॥

भावार्थ—हे मुने ! 'मैं कौन हूँ ? कहाँ से आया हूँ ? कहाँ जाऊँगा ? और मेरा क्या कर्त्तव्य है' ? इन प्रश्नों पर सुबुद्ध जन को बार बार विचार करना चाहिए ॥ ३ ॥

हानिलाभा जनुर्मृत्यु सुखं दुःखं समुद्वहन् ।
व्यपनयति जीवनं स्वीयं समदर्शीति गौतम ॥४॥

भावार्थ—हे गौतम ! जो पुरुष हानि-लाभ जीवन मरण और सुख दुःख का समान समझता हुआ जीवन बिताता है वही समदर्शी होता है ॥ ४ ॥

सुपात्रो मम शिष्यस्त्वं सद्विनयमविलक्षणः ।
सुपात्रे ज्ञान-सन्दानं मत्वा बोधं प्रदीयते ॥५॥

भावार्थ—हे सौम्य ! तू मेरा सुपात्र सहृदय और विलक्षण शिष्य है इस लिए मैं तुझे ज्ञान देता हूँ, क्योंकि सुपात्र को ज्ञान देना ही उचित है ॥ ६ ॥

उर्वराबीज मन्धानं भा-विसत्फल-दायकम् ।
तथा सुपात्रशिष्येऽपि बोधःसर्व सुख प्रदः ॥६॥

भावार्थ—हे मुनि ! जिस प्रकार उपजाऊ भूमि में बोया गया बीज भविष्य में सुफल देता है, उसी प्रकार सुपात्र शिष्य को दिया गया सुबोध सब सुख देने वाल है ॥ ६ ॥

शिष्यास्त्रिविधाः भद्र ! पात्राः सुपात्रसंज्ञकाः ।
कुपात्राश्च क्रमेणैते भवन्ति भुवि गौतम ॥७॥

भावार्थ—हे भद्र ! पात्र, सुपात्र और कुपात्र भेद से शिष्य तीन प्रकार के होते हैं ॥ ७ ॥

गुरोर्हितकरीं वाणीं कठोरामपि गौतम ।
आधत्ते यो मनः पात्रे स पात्रः शिष्य उच्यते ॥८॥

भावार्थ—हे गौतम ! गुरु के हितकारी कठोर वचनों को भी जो प्रेम-पूर्वक मन रूपी पात्र में धारण करता है उसी को पात्र शिष्य कहते हैं ॥ ८ ॥

सन्दधानो गुरोराज्ञां, स्वान्यकल्याणसाधकः ।
यशोविस्तारको भद्र ! सुपात्रः शिष्य उच्यते ॥९॥

भावार्थ—हे भद्र ! गुरु की आज्ञा के अनुसार, अपना और दूसरों का कल्याण करने वाला तथा गुरु के यश का विस्तारक सुपात्र शिष्य होता है ॥ ९ ॥

दुश्चरित्रो दुराग्रही गुर्वाज्ञाविभंजकः ।
संगको दुष्टलोकानां कुपात्र शिष्य उच्यते ॥१०॥

भावार्थ—हे मुनि ! दुश्चरित्र दुराग्रही, गुरु की आज्ञा का भङ्ग करने वाला और दुष्टों की संगति करने वाला कुपात्र शिष्य होता है ॥१०॥

गुरवोऽपि त्रिधा भद्र ! प्राग् गुरुः सद्गुरुस्तथा ।
कुगुरुश्च क्रमेणैते भवन्ति जगतीतले ॥११॥

भावार्थ—हे भद्र ! गुरु भी तीन प्रकार के होते हैं। गुरु सद्गुरु तथा कुगुरु ॥ ११ ॥

शिष्यं स्वमनस्तावाप्त्यै स्वीकरोति मुनेऽत्र यः ।
व्यवहारस्य शिक्षायै गुरुरित्यभिधीयते ॥१२॥

भावार्थ—हे मुनि ! जो अपनी मानस कामना के लिये और व्यवहार की शिक्षा देने के लिये शिष्य बनाता है उसे गुरु कहते हैं ॥ १२ ॥

सम्यक्त्वस्य सन्दाता शास्त्रोऽन्तस्य प्रकाशकः ।
निस्स्वार्थाचारसञ्चारी सद्गुरुः स समुच्यते ॥१३॥

भावार्थ—हे भद्र ! सम्यक्त्व रत्न के प्रदाता शास्त्र और शास्त्रज्ञान के प्रकाशक, तथा निःस्वार्थ आचार का संचार करने वाले गुरु को सद्गुरु कहते हैं ॥ १३ ॥

मिथ्यात्ववृत्तिसंलग्नः शास्त्राचारविवर्जितः।
कूपदेशोऽन्धकूपस्थः कुगुरुश्चेति गौतम॥१४॥

भावार्थ—हे गौतम। मिथ्यात्व वृत्ति में सलग्न, शास्त्र के आचार से रहित, दुरुपदेशी, अज्ञान रूप कूप में स्थित, गुरु ही कुगुरु होता है ॥ १४ ॥

दुष्टसंगो यथा धीमन्, जीवनोद्देश्यपातकः।
कुगुरूणां तथा संगः सर्वस्यैवाहितावहः ॥१५॥

भावार्थ—हे धीमन्। जिस प्रकार दुष्ट का सग जीवन को, लक्ष्य से गिरा देता है, उसी प्रकार कुगुरु का सग भी सब के लिये अहितकर है ॥ १५ ॥

इन्द्रभूते। सुशिष्यस्य सद्गुरोश्चेत्सुसङ्गम.।
तदा तु मुक्तिसम्पत्तेः प्राप्तौ माकुरु संशयम् ॥१६॥

भावार्थ—हे इन्द्रभूति। यदि सुशिष्य और सद्गुरु इन दोनों का सङ्गम हो जाय, तो मुक्तिरूपि - सम्पत्ति की प्राप्ति में संशय तू मत कर ॥ १६ ॥

सद्गुरोरनुकम्पायामज्ञानान्तर्विलीनता।
जायते शुद्धबोधश्च चेतश्चक्षुः प्रकाशकः ॥१७॥

भावार्थ—हे मुनि। सद्गुरु की कृपा से अज्ञान नष्ट हो जाता है। फिर हृदय चक्षु का प्रकाशक शुद्ध बोध उत्पन्न होता है ॥१७

अज्ञानेनैव जीवोऽयं मोहं प्राप्नोति गौतम ।
तस्मादज्ञाननाशाय यतितव्यं प्रयत्नतः ॥१८॥

भावार्थ—हे गौतम ! अज्ञान से ही जीव मोह को प्राप्त होता है। अतः इस अज्ञान के नाश के लिये प्रयत्न करना चाहिए ॥१८॥

पूर्णतः प्राप्तुमिच्छुश्च त्वत्स्वरूपस्थं तु मां मुने ।
भवोऽन्तरं विनाऽस्मानं मयि संयोजये निजम् ॥१९॥

भावार्थ—हे मुनि ! यदि तू स्वरूप से मुझे पाना चाहे तो अभेदभाव से अपने आप को मेरे में लीन करदे॥ १९ ॥

प्रमादो हि मनुष्याणां विजेतव्यो महारिपुः ।
तन्नाशेन महाभाग निर्मोहत्वं प्रजायते ॥२०॥

भावार्थ—हे महाभाग ! प्रमाद ही एक जीतने के योग्य महाशत्रु है। इसके जीतने से ही निर्मोह दशा का जन्म होता है ॥२०॥

प्रमादेनावृताः सन्ति निजात्मस्थाः सर्वे गुणाः ।
तस्मात्त्वं मा महाविद्वन् प्रमत्स्या हतचक्षुषा ॥ २१॥

भावार्थ—हे विद्वन् ! प्रमाद से आत्मा के सब गुण ढके हुए हैं। इसीलिए यह जीव ज्ञान चक्षु बंद होने से इधर उधर भटकता है ॥२१॥

निष्प्रमादी जनः क्वापि पापपङ्के, न लिप्यते ।
संसारे स विवेकात्मा पङ्के पङ्कजवत्सदा ॥२२॥

भावार्थ– हे मुनि ! निष्प्रमादि मनुष्य पाप रूपी कीचड मे लिप्त नहीं होता, ससार में वह विवेकात्मा, पङ्क-पङ्कज के समान अलिप्त रहता है ॥२२॥

जागृति धर्मिलोकानां, निद्रोचिता दुरात्मनाम् ।
धर्मिभिः धर्मवृद्धिःस्यात्, पापिभिःपापवर्द्धनम् ॥२३॥

भावार्थ—हे मुनि ! धार्मिक लोगों की जागृति अच्छी होती है और पापियों का शयन करना ही उचित है, क्योंकि धार्मिक के जागने से धर्म की वृद्धि होती है और पापी के जागने से पाप बढ़ता है ॥ २३ ॥

अन्तः प्रवृत्तिसन्त्यागाद्बाह्यत्यागः शुभप्रदः ।
अन्तर्वृत्ते विनात्यागं वाह्यत्यागो निरर्थकः ॥२४॥

भावार्थ– हे सौम्य । अन्तर्वृत्ति के त्याग से ही वाह्य त्याग सुखदायी होता है, अन्तर् वृत्ति के त्याग विना वाह्य त्याग व्यर्थ है ॥२४॥

ज्ञातव्यं सौम्य ! सत्तत्त्वं, विज्ञातव्यं विशेषत ।
हेयं तत्व सदा हेयं, चिन्त्यं चिन्त्यं च सर्वदा ॥२५॥

भावार्थ—हे सौम्य । जानने योग्य सत तत्त्व को जानना चाहिये, त्याज्य तत्त्व को विशेषकर छोडना चाहिये तथा चिन्तनीय तत्त्व की चिन्तना करनी चाहिये ॥२५॥

आपत्तिकालसम्प्राप्ते ध्येयं धैर्यं सदा मुने ।

आपदो हि मनुष्याणां शिक्षिकाश्च परीक्षिकाः ॥२६॥

भावार्थ—हे मुनि । आपत्ति काल आने पर सदा धैर्य रखना चाहिये क्योंकि आपत्तियां मनुष्य की शिक्षिकाएं और परीक्षिकाएं हैं ॥२६॥

आगतानां विपत्तीनां साम्यत्वादवमर्षणम् ।
नास्तीदं तपसो न्यूनं तितिक्षूणां सुखकरम् ॥२७॥

भावार्थ—हे मुनि ! आई हुई विपत्तियों का समतापूर्वक सहन करना सहनशील व्यक्तियों के लिये तपस्या से कम नहीं है ॥२७॥

विधातव्यं न तत्ताप्यं तपो यद्बाधते शुभम् ।
मनश्च वञ्चयेद्धर्मादधर्मे योजयेत्तथा ॥२८॥

भावार्थ—हे मुनि । ऐसा बाधा-उत्पादक तप नहीं करना चाहिये जो शुभ में बाधक हो और धर्म से मन को हटाकर अधर्म में लगाए ॥२८॥

जडीभूतान् पदार्थान् वै, दृष्ट्वा सन्नान् स्वकर्मणि ।
चैतन्येनापि कर्तव्ये निष्क्रियत्वं न शोभते ॥२९॥

भावार्थ हे मुनि ! जब जड पदार्थ भी अपनी २ क्रिया में संलग्न हैं तो फिर इस चैतन्य को निष्क्रिय बैठना नहीं फबता ॥२९॥

प्रति पदार्थ-साफल्य, स्वकर्तव्यपरायणे ।
अस्त्येतन्मूक्तिसार्थक्यं मत्कैवल्ये विराजते ॥३०॥

भावार्थ हे मुनि । प्रत्येक पदार्थ को सफलता उसके कर्त्तव्य परायण होने मे ही निहित है । इस सूक्ति की सार्थकता मेरे केवल ज्ञान में स्पष्ट दीख रही है ॥३०॥

यस्य हस्तौ सु दानेन, कण्ठः सत्येन शोभते ।
कर्णौ सद्बोधशब्देन तस्यान्यद्-व्यर्थ-भूषणम् ॥३१॥

भावार्थ—हे मुनि । जिस के हाथ दान से, कण्ठ सत्य से, और कान सद्वोध श्रवण से शोभित हैं, उसके लिए अन्य भूषण व्यर्थ हैं ॥३१॥

केनापि शत्रुवद्भाव, आत्मारित्वं महामते ।
अतोमित्रत्वभावेन सस्थातव्यं समै समम् ॥३२॥

भावार्थ—हे महामते । किसी के भी साथ, शत्रुता करना अपनी आत्मा के साथ शत्रुता करना है । अत सब के साथ मित्रता का बर्ताव करना चाहिये ॥३२॥

चारित्र्यं यस्य संभ्रष्टं, तत्पाण्डित्यमनर्गलम् ।
अतश्चारित्र्य-निर्माणं कर्तव्यं लोक-सिद्धये ॥३३॥

भावार्थ—हे मुनि । जिसका चरित्र भ्रष्ट है, उस का पाण्डित्य भी निरर्थक है । अत लोक सिद्धि के लिये, चरित्र-निर्माण करना चाहिये ॥३३॥

लोकापवादभीत्या ये त्यजन्ति नैव सत्पथम् ।
ते मर्य्यादापरिभ्रष्टाः कातरा पुरुषाः मुने ॥२४॥

भावार्थ—हे मित्र ! जो लोग लोकापवाद भय से अपना सत्य पथ को छोड़ देते हैं वे अपनी मर्यादा से भ्रष्ट संसार में कायर पुरुष होते हैं ॥२४॥

अन्यैरन्यायिभिर्नाके निजन्यायस्य याचनम् ।
व्यर्थं भवति सद्बुद्धे ! लोके हास्यास्पदं च तत् ॥२५॥

भावार्थ—हे सद्बुद्धि ! दूसरों के साथ अन्याय करने वालों की, अपने लिये न्याय की मांग करना हास्यास्पद और व्यर्थ है ॥२५॥

जीवनं व्यर्थं भोगेषु यापयन्त्येव दुर्धियः ।
यत्र विज्ञा निजात्मानं योजयन्ति शिवोदये ॥२६॥

भावार्थ—हे मुनि ! जहाँ विद्वान लोग अपने जीवन को कल्याण में लगाते हैं वहीं मूर्ख लोग इस जीवन को व्यर्थ भोग विलास में गवा देते हैं ॥२६॥

यथा यद्वत्समिच्छन्ति निजकल्याणसाधनम् ।
तथाऽन्येषामपि भव्या न्यायोपायं प्रियंवद ॥२७॥

भावार्थ—हे प्रियंवद ! जिस प्रकार लोग अपने कल्याण के मार्ग को देखते हैं उसी प्रकार दूसरों का भी देखना चाहिये ॥२७॥

एष प्रदर्शितः पन्थाः इन्द्रभूते त्वदिच्छया।
अनेनोच्चलिताःलोकाःलप्स्यन्ते शान्तिमव्ययाम् ॥३८॥

भावार्थ – हे इन्द्रभूते। तुम्हारे पूछने पर यह सुपथ तुम्हारे सामने प्रदर्शित किया है, जो लोग इस सुपथ पर चलेंगे, वे अटल शांति को प्राप्त करेंगे ॥३८॥

एवं भगवतो वाक्यं समाकर्ण्याथ गौतम.।
महावीरं प्रभुं स्तोतुं हर्षगेमा प्रचक्रमे ॥३९॥

भावार्थ इस प्रकार भगवान् के वचनामृत को पान कर गौतम मुनि अत्यन्त प्रसन्नतापूर्वक भगवान महावीर की स्तुति करने लगे ॥३९॥

यदुक्तं श्रीमुखात्स्वामिन! युक्तमक्षरशःसमम्।
कैवल्यज्ञानसंयुक्तं, प्रतिशब्दोत्र सर्वथा ॥४०॥

भावार्थ—हे स्वामिन्! आपने अपने श्रीमुख से जो कुछ भी कहा वह अक्षरश सत्य है आपका प्रतिशब्द केवल ज्ञान से युक्त है ॥४०॥

सूर्यवद् भासमानोऽत्र दृश्यते त्रिशलात्मज।
जगदुद्धारकः कश्चिद्, नैवास्ति श्रीमतां समः ॥४१॥

भावार्थ—हे त्रिशलासुत। आप इस लोक मे सूर्य की भाँति प्रकाशमान हैं, आप के समान ससार का उद्धारक और कोई नहीं है ॥४१॥

त्रिलोकी पूजितं दिव्यं किमप्यैश्वर्यसम्मितम् ।
भवन्तं प्राप्य पूरेषा कुण्डलं कुण्डलायते ॥४२॥

भावार्थ – हे भगवन ! तीन लोकों द्वारा पूजित, किसी अलौकिक ऐश्वर्य से सुशोभित यह आपकी जन्म भूमि कुण्डलपुरी इस संसार में आप को प्राप्त कर के परमभाग्यवती हुई है ॥४२॥

त्वदीयमम्युपासम्य, पुत्ररत्नं महाप्रभो ।
सिद्धार्थः सर्वसिद्धार्थो भूतो भूत जनवरः ॥४३॥

भावार्थ--हे महाप्रभो ! आप जैसे महान पुत्र रत्न को प्राप्त करके, राजा सिद्धार्थ सचमुच सिद्धार्थ और अलौकिक पुरुष हो गए ॥४३॥

जगतोऽपि सखा भूत्वा भ्रातृप्रीतिं प्रदर्शितुम् ।
नन्दीवर्द्ध ना नाम सद्भ्राताऽऽश्रीयतोत्तमः ॥४४॥

भावार्थ--हे भगवन ! सम्पूर्ण जगत के सखा होकर भी, अपने भ्रातृप्रीति के आदर्श के लिये नन्दी वर्द्धन नामक श्रेष्ठ भाई का आश्रय लिया ॥४४॥

त्वत्सङ्गसङ्गिनी भूत्वा भाविनी काचिदिङ्गितिः ।
विश्वव्याप्त यशोमूर्तिर्यशोदाभूत् यशःप्रदा ॥४५॥

भावार्थ--हे भगवन ! किसी भविष्यत्काल के संकेत से सम्पूर्ण विश्व के यश की विभूति आपकी जीवनसाथिनी, धर्म पत्नी श्रीमती यशोदा देवी संसार के लिये यश का कारण हुई ॥४५॥

प्रणाश्य मोहिनी-कर्म जगदेतत्प्रकाशितम् ।
त्वयाऽऽर्हत्पदं स्वामिन् ! आदर्शी भूतमाहितम् ॥४६॥

भावार्थ—हे स्वामिन् । मोहिनी कर्म का नाश करके आपने इस संसार को प्रकाशित कर दिया और परम पवित्र 'आर्हत' पद को आदर्शी भूत बना दिया ॥४६॥

मोहभूकम्पकम्पेन कम्पितेयं रसा प्रभो ।
तव ज्ञानाश्रयं प्राप्य स्थायिनी भूततां गता ॥४७॥

भावार्थ- हे प्रभो ! यह पृथ्वी मोह रूपी भूकम्प से कम्पित हो रही थी, अब आप के ज्ञान आश्रय को पाकर स्थिर हो गई है ॥४७॥

भवतां भव्यदर्शेण, पशवोऽपि परंगताः ।
किंपुनर्मानवानां स्यात्कार्यसिद्धौ विलम्बता ॥४८॥

भावार्थ—हे प्रभो ! आपके भव्य दर्शन से, पशुओं का भी कल्याण हो गया, फिर भला मनुष्यों के कल्याण में क्या विलम्ब हो सकता है ॥४८॥

धन्याः देव ! त एवात्र ये सेवन्ते भवत्पदम् ।
धन्यो धन्यः स बोधात्मा पश्यतित्वत्सुविग्रहम् ॥४९॥

भावार्थ—हे देव । जो आपके चरणों की सेवा करते हैं वे धन्य हैं, और वे बोधात्मा भी धन्यवाद के पात्र हैं जो आप का दर्शन करते हैं ॥४९॥

धन्यं तेशासनं स्वामिन्, साम्यरूपं सुवर्त्तते।
यत्र सम्पूर्ण लोकानां मोक्षमार्गोऽप्यनावृतः ॥५८॥

भावार्थ—हे स्वामिन्! आप का साम्य रूप शासन धन्य है जिस में भेदभाव रहित सम्पूर्ण मनुष्यों के लिये मोक्ष का द्वार खुला है ॥५८॥

त्वदुपदेशपानं ये कुर्वते प्रेम-पूरिताः।
तेऽवश्यं पारमेष्यन्ति, दुस्तराद् भवसागरात् ॥५९॥

भावार्थ—हे भगवन्! आप के उपदेश रूपी अमृत का जो लोग प्रेमपूर्वक पान करते हैं, वे अवश्य ही संसार सागर से पार होते हैं ॥५९॥

॥ इति श्रीमत्कविरत्न उपाध्याय अमर मुनि विरचितायां श्रीमद्गौतमगीतायां "प्रबोधयोगो नाम" अष्टादशोऽध्यायः

)—०—(

—प्रशस्ति—श्लोकाः—

ऋषभाद् वीर पर्यन्त तथाच गौतमादयः ।

बभूवुः वहवो देवाः शासनेशाः यथाक्रमम् ॥१॥

भावार्थ—आदिप्रभु भगवान ऋषभदेव जी से लेकर चरम तीर्थङ्कर भगवान महावीर तक तथा इसके पश्चात् अनेकानेक शासन के स्वामी जैनाचार्य गणधर गौतम स्वामी जी आदि महा-पुरुष हुए ॥ १ ॥

तेषां वंशोपमे संघे जैने पाञ्चालसंज्ञके ।

श्री मदमरसिंहाख्य आचार्योभून्महातपाः ॥२॥

भावार्थ—उन महापुरुषों के वंशरूप पंजाब देशस्थ परम पुरातन श्री जैन संघ में परम तपस्वी, परम तेजस्वी आचार्य श्री अमर सिंह जी महाराज हुए, जिनके पवित्र नाम से "श्री अमर जैन संघ" की स्थापना हुई है ॥ २ ॥

तेषां पट्टे समारूढो भव्य-भाव-विभूषितः ।

द्वैर्यधौरेय "आचार्यो रामचन्द्र जी" ॥३॥

उनके पवित्र पट्ट पर भव्य भावों से विभूषित ...की भांति धैर्यधारी जैनाचार्य श्री रामचन्द्र जी

यज्ञादि पशु हिंसानां मन्तीकृत्य त्वया प्रभो ।
अज्ञानान्धकुशासर्वं जगदवत्समुद्धृतम् ॥५०॥

भावार्थ—हे प्रभो । यज्ञादि में पशु हिंसा का अन्त कर के आपने अज्ञान के अन्धकार से इस सम्पूर्ण जगत का उद्धार कर दिया ॥५०॥

त्वदीयातिशयं वीर ! को वक्तुमुत्सहो भवत् ।
स्वमग्नत्वेऽप्यनग्नत्वं, रूपये पथिकायते ॥५१॥

भावार्थ—हे वीर ! आप के अतिशय का वर्णन करने की किस में सामर्थ्य है ? प्रभो ! आप नग्न होने पर भी नग्न नहीं दीखते यह आप का अतिशय ही चमत्कार है ।।५१॥

सुमेरुः सर्व शैलेषु भं यस्तमः प्रगण्यते ।
तथैव मुनि संघऽस्मिन भवानेव शिरोमणिः ॥५२॥

भावार्थ—हे भगवन् ! जिस प्रकार सुमेरु सब पर्वतों में श्रेष्ठ है, उसी प्रकार इस मुनि संघ में आप ही सर्वशिरोमणि हैं ॥ ५२ ॥

नक्षत्रेषु यथा चन्द्रो नादेषु मेघगर्जनम् ।
तरुषु चन्दनं च एतस्तद्वन्मुनिगणे भवान् ॥५३॥

भावार्थ—हे देव ! जिस प्रकार, नक्षत्रों में चन्द्रमा नादों में मेघ गर्जन वृक्षों में चन्दन वृक्ष सब में श्रेष्ठ है उसी प्रकार मुनि ...

ज्ञानेषु केवलं ज्ञानं, वनेषु नन्दनं वनम् ।
रसेष्विक्षुरसस्तद्वत्, भवतां गणना प्रभो ॥५४॥

भावार्थ—हे प्रभो । जिस प्रकार ज्ञानों में केवल ज्ञान, वनों मे नन्दन वन, रसों में इक्षु रस सर्व श्रेष्ठ है, उसी प्रकार आप भी ससार मे सर्वश्रेष्ठ है ॥५४॥

मृगेन्द्रः सर्वजीवेषु पुष्पेषु कमलं यथा ।
पक्षिषु गरुड श्रेष्ठस्तथैवापि भवान्मतः ॥५५॥

भावार्थ—हे प्रभो । जिस प्रकार सब जीवों में सिंह, पुष्पों मे कमल, पक्षियों में गरूड सर्वश्रेष्ठ है, उसी प्रकार ससार में आप भी सर्व श्रेष्ठ हैं ॥ ५५ ॥

अभयं सर्वदानेषु, वाक्षु निर्वद्यमुच्यते ।
तपःसुब्रह्मचर्यं च तथैवाऽपि भवान् भुवि ॥५६॥

भावार्थ—हे देव । जिस प्रकार सब दानों में अभय दान वचनों मे निर्वद्य वचन, तपों मे ब्रह्मचर्य तप सर्वश्रेष्ठ है, उसी प्रकार ससार में, आप सर्वश्रेष्ठ हैं ॥ ५६ ॥

सभास्विन्द्रसभा यद्वत् गतौ मुक्ति गरीयसी ।
धर्मेष्वहिंसनं धर्मस्तद्वत्त्व मुनिनायक ॥५७॥

भावार्थ—हे मुनिनायक । जिस प्रकार सभाओं में इन्द्रसभा, गतियों में मुक्तिगति, धर्मों में अहिंसा सर्वश्रेष्ठ है ॥ ५७ ॥

यज्ञादि पशु हिंसानां मन्तीकृत्य त्वया प्रभो ।
अज्ञानान्धकृतात्सर्वं जगदेतत्समुद्धृतम् ॥५ ॥

भावार्थ—हे प्रभो ! यज्ञादि में पशु हिंसा का अन्त कर के आपने अज्ञान के अन्धकार से, इस सम्पूर्ण जगत का उद्धार कर दिया ॥५०॥

त्वदीयातिशयं वीर ! को वक्तुमुत्सहो भवेत् ।
त्वयमन्तेऽप्यनम्नस्त्वं, दृश्यसे परिक्रायते ॥५१॥

भावार्थ—हे वीर ! आप के अतिशय का वर्णन करने की किस में सामर्थ्य है ? प्रभो ! आप नग्न होने पर भी नग्न नहीं दीखते यह आप का अतिशय ही चमत्कार है ॥५१॥

सुमेरुः सर्व शैलेषु श्रेयस्तमः भगवयते ।
तथैव मुनि संघेऽस्मिन् भवानेव शिरोमणिः ॥५२॥

भावार्थ—हे भगवन् ! जिस प्रकार सुमेरु सब पर्वतों से श्रेष्ठ है उसी प्रकार इस मुनि संघ में आप ही सर्वशिरोमणि हैं ॥ ५२ ॥

नक्षत्रेषु यथा चन्द्रो नादेषु मेघगर्जनम् ।
तरुषु चन्दनं च प्ठस्तद्वन्मुनिगणे भवान् ॥५३॥

भावार्थ—हे देव ! जिस प्रकार, नक्षत्रों में चन्द्रमा नादों में मेघ गर्जन वृक्षों में चन्दन वृक्ष सर्व श्रेष्ठ है उसी प्रकार मुनि गणों में आप हैं ॥५३॥

ज्ञानेषु केवलं ज्ञानं, वनेषु नन्दनं वनम् ।
रसेष्विक्षुरसस्तद्वत्, भवतां गणना प्रभो ॥५४॥

भावार्थ—हे प्रभो । जिस प्रकार ज्ञानों में केवल ज्ञान, वनों मे नन्दन वन, रसों में इक्षु रस सर्व श्रेष्ठ है, उसी प्रकार आप भी ससार मे सर्वश्रेष्ठ है ॥५४॥

मृगेन्द्रः सर्वजीवेषु पुष्पेषु कमलं यथा ।
पक्षिषु गरुड श्रेष्ठस्तथैवापि भवान्मतः ॥५५॥

भावार्थ—हे प्रभो । जिस प्रकार सब जीवों में सिंह, पुष्पों में कमल, पक्षियों में गरुड सर्वश्रेष्ठ है, उसी प्रकार ससार में आप भी सर्व श्रेष्ठ है ॥ ५५ ॥

अभयं सर्वदानेषु, वाक्षु निर्वद्यमुच्यते ।
तपःसुब्रह्मचर्यं च तथैवाऽपि भवान् भुवि ॥५६॥

भावार्थ—हे देव । जिस प्रकार सब दानों में अभय दान वचनों मे निर्वद्य वचन, तपों में ब्रह्मचर्य तप सर्वश्रेष्ठ है, उसी प्रकार ससार में, आप सर्वश्रेष्ठ हैं ॥ ५६ ॥

सभास्वेन्द्रसभा यद्वत् गतौ मुक्ति गरीयसी ।
धर्मेष्वहिंसनं धर्मस्तद्वत्त्वं मुनिनायक ॥५७॥

भावार्थ—हे मुनिनायक । जिस प्रकार सभाओं में इन्द्रसभा, गतियों में मुक्तिगति, धर्मों में अहिंसा सर्वश्रेष्ठ है ॥ ५७ ॥

धन्य देशासनं स्वामिन्, साम्यरूपं सुवस्तते ।
यत्र सम्पूर्ण लोकानां मोक्षमार्गोऽप्यनावृत ॥५८॥

भावार्थ—हे स्वामिन् ! आप का साम्य रूप शासन धन्य है जिस में भेदभाव रहित सम्पूर्ण मनुष्यों के लिये मोक्ष का द्वार खुला है ॥५८॥

त्वदुपदेशपानं ये कुर्वते प्रेम-पूरिता ।
तेऽवश्य पारमभ्यन्ति दुःखदात् भवसागरात् ॥५९॥

भावार्थ—हे भगवन् ! आप के उपदेश रूपी अमृत का जो लोग प्रेमपूर्वक पान करते हैं, व अवश्य ही संसार सागर से पार होते हैं ॥५९॥

इति श्रीमत्कविरत्न उपाध्याय अमर मुनि
विरचितायां श्रीमद्गौतमगीतिकायां "प्रबोधयोगो
नाम" सप्तदशोऽध्याय

)—०—(

—प्रशस्ति—श्लोकाः—

ऋषभाद् वीर पर्यन्तं तथाच गौतमादयः ।

बभूवुः बहवो देवाः शासनेशाः यथाक्रमम् ॥१॥

भावार्थ—आदिप्रभु भगवान ऋषभदेव जी से लेकर परम तीर्थङ्कर भगवान महावीर तक तथा इसके पश्चात् अनेकानेक शासन के स्वामी जैनाचार्य गणधर गौतम स्वामी जी आदि महापुरुष हुए ॥ १ ॥

तेषां वंशोपमे संघे जैने पाञ्चालमण्डले ।

श्री मदमरसिंहाख्य आचार्योभून्महातपाः ॥२॥

भावार्थ—उन महापुरुषों के वंशरूप पंजाब देशस्थ परम पुरातन श्री जैन संघ में परम तपस्वी, परम तेजस्वी आचार्य श्री अमर सिंह जी महाराज हुए, जिनके पवित्र नाम से " श्री अमर जैन संघ " की स्थापना हुई है ॥ २ ॥

तेषां पट्टे समारूढो भव्य-भाव-विभूषितः ।

रामवद्धैर्यधौरेय "आचार्यो रामबक्ष जी" ॥३॥

भावार्थ—उनके पवित्र पट्ट पर भव्य भावों से विभूषित श्री रामचन्द्र जी की भांति धैर्यधारी जैनाचार्य श्री रामबक्ष जी महाराज हुए ॥ ३ ॥

तत्पदपूर्वतमस्के नानानियमनिर्मिते ।
सर्वसद्भावभूयिष्ठो मोतिराम पदोऽप्यभूत् ॥४॥

भावार्थ उनके पूज्य तेजस्वी नाना नियमों से सुशोभित पट्ट पर सर्वहितैषी सद्भावों से पूर्ण जैनाचार्य श्री मोतीराम जी महाराज हुए ॥ ४ ॥

ततः शास्त्रार्थपञ्चास्यो वादि गर्व विमर्दकः ।
नाना तर्क पटुर्जातः 'श्रीमत्सोहन लाल जी' ॥५॥

भावार्थ—उनके पश्चात् शास्त्रार्थ केसरी वादीमानमर्दक नाना तर्कों में चतुर जैनाचार्य श्री सोहनलाल जी महाराज हुए ।५॥

तत्पट्टे राजिते रम्ये भक्तवृन्द समाश्रिते ।
आचार्य काशिरामोऽभूत् शोभमानः परंतपा ॥६॥

भावार्थ—उनके भक्त वृन्दों से सुशोभित और सुन्दर पट्टपर परम शोभायमान परमतपस्वी जैनाचार्य श्री काशीराम जी महाराज हुए ॥ ६ ॥

तेषां सुशासने श्रीमान् मेधावी भक्तवत्सलः ।
पूर्ण पाण्डित्य सम्पन्नः श्रीमत्कस्तूर चन्द्र जी ॥७॥

भावार्थ—उनके शुभशासन में परममेधावी भक्तवत्सल पूर्णपाण्डित्य से सम्पन्न श्रीमान् स्वामी कस्तूरचन्द्र जी महाराज हैं ॥ ७ ॥

तच्छिष्येणामृतेनेयं जैन शास्त्रानुसारतः ।
श्रीमद्गौतम गीताख्या कृतिस्तुत्याकृता कृतिः ॥८॥

भावार्थ—उन परमप्रतापी गुरुदेव श्री कस्तूरचन्द्र जी महाराज के शिष्य 'अमृत मुनि' ने सब विद्वानों से प्रशंसनीय श्री मद् गौतम गीता की रचना की है ॥ ८ ॥

एकान्ते द्विमहस्राब्दे, भव्येनव्येन्द्र ग्रन्थके।
सम्वत्सर्यां बुधे शुद्धे गीतेयं पूर्णताङ्गता ॥९॥

भावार्थ—शुभ २००१ विक्रम सम्वत् भादों शुदी पचमी सम्वत्सरी महापर्व में बुधवार के दिन, नई देहली मे यह गौतम गीता पूर्ण हुई ॥ ९ ॥

आसीज्ज्योतिर्विदाचार्यो जन्मपक्षस्य मे पिता।
श्री युगल किशोराख्यो राज्य मान्यो द्विजोत्तमः ॥१०॥

भावार्थ मेरे ममाग पक्ष के पिता ज्योतिर्विद् आचार्य तथा राज्यमान्य पण्डित युगलकिशोर जी थे ॥१०॥

तेषामग्रपुरस्थाने भूरिवैभवभूषिते।
सुमित्राऽद्वितीया देवी सुपुवे मामकिञ्चनम् ॥११॥

भावार्थ—उन पण्डित युगल किशोर जी की अद्वितीय धर्म पत्नी श्रीमती सुमित्रा देवी ने वैभव सम्पन्न "आगरा" नगर मे मुझे अकिंचन अमृत चन्द्र को जन्म दिया ॥११॥

वसु-ऋषि-ग्रहे-चन्द्रे, वर्षे कृष्णाष्टमीमिते।
सोऽहममृत चन्द्राख्यो भाद्र मासे शुभेऽभवम् ॥१२॥

भावार्थ विक्रम सम्वत १९७८ भाद्रपद कृष्णाष्टमी को मेरा (अमृत चन्द्र का) जन्म हुआ ॥१२॥

श्री मत्कस्तूर चन्द्रस्य गुरोः पादाब्जसन्निधौ।
प्राप्तोऽहं शैशवे काले शिक्षाप्राप्तिस्ततः श्रिता ॥१३॥

भावार्थ—निर्भीक वक्ता पण्डित राज श्री कस्तूर चन्द्र जी महाराज के चरण कमलों मे मैं बाल्यकाल मे ही आ गया था तथा उन्हीं श्री चरणों में शिक्षा प्राप्त की ॥ १३ ॥

युग-भद्र-ग्रहे-चन्द्रे वर्षे राधे सिते शुभे ।

द्वितीया तिथि सम्पन्ने दीक्षया दीक्षितोऽभवम् ॥१४

भावार्थ—विक्रम सम्वत् १९५९ वैशाख शुदि दूज के पवित्र दिन में गुरुदेव श्री कस्तूर चन्द्र जी महाराज के चरणकमलों में मुनिदीक्षा से दीक्षित हुआ ॥ १४ ॥

गीता-प्रकाशन काले वर्तते ऽस्मिन्मनोरमे ।

शासनेशा शुभाचार्य 'श्री मत्कपूर चन्द्र जी ॥१५॥

भावार्थ—इस श्रीमद्गौतम गीता के प्रकाशन के शुभ काल में जैन शासन के नायक वर्तमान आचार्य श्री कपूर चन्द जी महाराज हैं ॥ १५ ॥

श्रीमद्गुरुप्रसादेन संघस्य हित हेतवे ।

उपाध्याय पदस्थोऽहं तेषामेवानुशासने ॥१६॥

भावार्थ—श्रीगुरुदेव के कृपाप्रसाद से श्री संघ के हितार्थ मैं उन्हीं परम पूज्य आचार्य श्री कपूर चन्द जी महाराज के शासन में "उपाध्याय पद पर हूँ" ॥ १६ ॥

प्रभासतो यावदय्यार्कौ यावच्चैवाऽचलाऽचला ।

मदीयेयं कृतिस्तावत् मोदयेल्लोकमानसम् ॥१७॥

भावार्थ जब तक संसार में चाँद सूरज प्रकाशित हैं, तथा जब तक यह पृथ्वी स्थिर है तब तक मेरी यह श्रीमद्गौतम गीता नामक कृति सम्पूर्ण लोक का मनोरंजन करे । ऐसी मेरी शुभ भावना है ॥१७

श्री मरुधररत्न उपाध्याय प्यारचन्द्रमुनि विरचिता

श्रीमद् गौतमगीता समाप्ता